अंतस्

अर्धवार्षिक पत्रिका
वर्ष 2013, अंक - 3

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर

इतिहास के झरोखे से

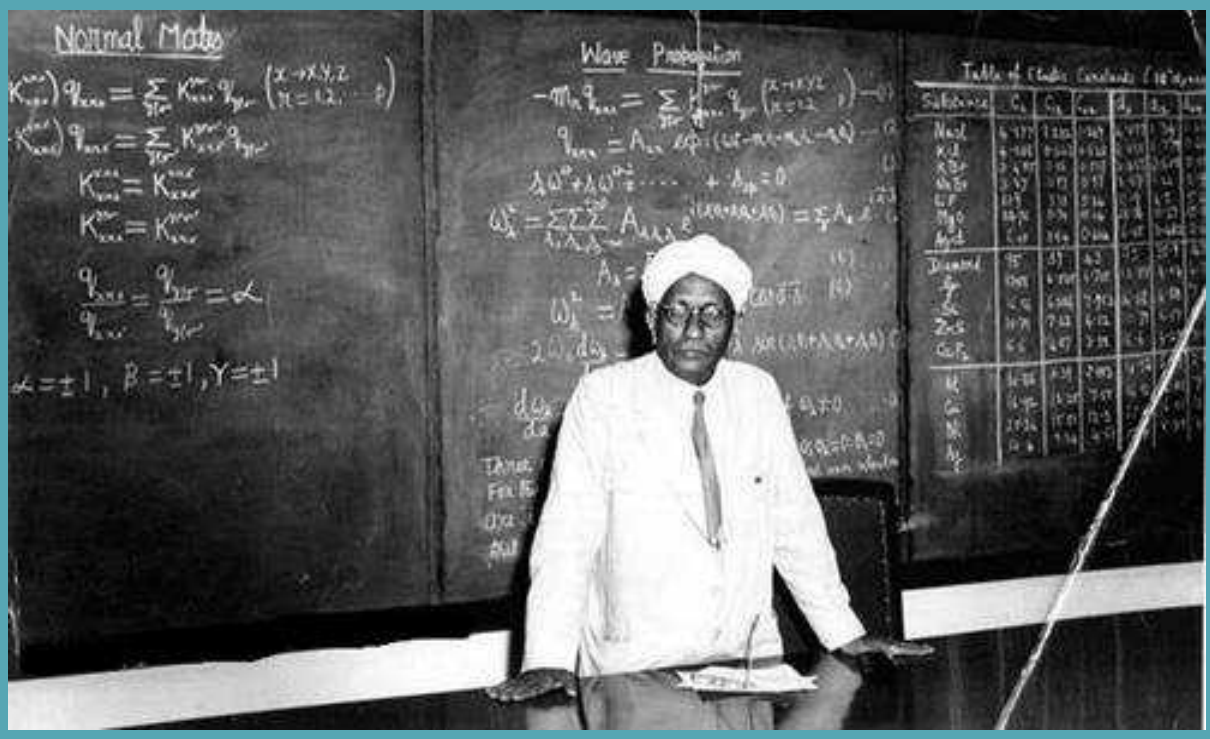

महान भारतीय भौतिक शास्त्री सर चंद्रशेखर वेंकटरमन जिन्हें वर्ष 1930 में भौतिक विज्ञान में 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था।

सादर अनुरोध

1. 'अंतस्' के आगामी अंक में प्रकाशन हेतु अपनी रचनायें शीघ्रातिशीघ्र भेजने का कष्ट करें।
2. रचनायें यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं पता का उल्लेख अपेक्षित है।
3. रचना की विषय-वस्तु प्रौद्योगिकी, विज्ञान अथवा मानविकी विषयों पर आधारित होना चाहिए।
4. आवश्यकतानुसार लेखों में शामिल छाया-चित्र, आंकड़ों से सम्बधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।
5. प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिन्दी भाषा हो।
6. अनूदित लेखों की प्रामाणिकता अवश्य सुनिश्चित करें। अनुवाद में सहायता हेतु संस्थान राजभाषा प्रकोष्ठ से संपर्क करें।
7. लेख मौलिक एवं यथासंभव अप्रकाशित होने चाहिए।

स-आभार
संपादन मंडल

नोट-पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, तार्किकता एवं सत्यता हेतु लेखकगण उत्तरदायी है।

संकेतक

संदेश–निदेशक ____ 1
उपनिदेशक ____ 2
संपादक ____ 3

विशेष – पाथेय ____ 4

गुरुदक्षिणा–कमलेश द्विवेदी ____ 7

रूबरू– प्रोफेसर इन्द्रनील मन्ना ____ 9
प्रोफेसर हरीशचन्द्र वर्मा ____ 11

साहित्ययात्रा–
1. सूखी रोटियाँ (कहानी) ____ 15
2. पतझड़ क्यों? (कविता) ____ 20
3. ईमानदारी और व्यावहारिकता (संस्मरण) ____ 21
4. वैज्ञानिक (कविता) ____ 22
5. माँ (कविता) ____ 22
6. यादें (संस्मरण) ____ 23
7. मन (कविता) ____ 25
8. कुछ (कविता) ____ 40
9. मार्ग (कविता) ____ 37
10. गांव की याद (कविता) ____ 26
11. एक आधी बची सिगरेट (कविता) ____ 27
12. ऐ सूरज हो कहाँ तुम? (कविता) ____ 27
13. कली (कविता) ____ 28
14. गजल ____ 28
15. मंदिर की घंटियाँ (कविता) ____ 28
16. खुशहाली (कविता) ____ 28
17. भाषा की परिभाषा (कविता) ____ 29
18. भगवान (कविता) ____ 29
19. मेरी कलम (कविता) ____ 29
20. कल, आज और कल (कविता) ____ 29

जीवन सौरभ – आत्मनिर्भर बनें ____ 30

बालबत्तीसी
चाणक्य (लघुकथा) ____ 31
न्याय (लघुकथा) ____ 32

बौछार
देवता के शव को मुक्त करो (व्यंग्य–कविता) ____ 33

सरोकार
एसिडिटी ____ 34
विज्ञान की दृष्टि में प्रकृति का शिल्प ____ 35
भारत में आत्म और न्याय पर आधारित स्व–उपचार ____ 36
प्रकृति और मानव ____ 38
भारत का विकास ____ 39

भाषा–विमर्श
हिंदी लेखन में प्रयुक्त विरामादि चिह्न ____ 41
हिंदी भाषा यथार्थ में कितनी? ____ 43
हिंदी मेरी मातृभाषा ____ 45

हिंदी साहित्य सभा–नयी मंजिले नयी उड़ान ____ 46
कार्यालयीन उपयोगी टिप्पणियाँ ____ 47

अंतस् परिवार

संरक्षकः
प्रोफेसर इन्द्रनील मन्ना
निदेशक

परामर्शदाताः
प्रोफेसर सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव
उपनिदेशक

संपादकः
प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा

सह-संपादकः
डॉ.वेदप्रकाश सिंह

संपादन-सहयोगः
प्रोफेसर समीर खांडेकर
प्रोफेसर सर्वेश चन्द्रा
प्रोफेसर हरीशचन्द्र वर्मा
डॉ.ओमप्रकाश मिश्र

अभिकल्पः
श्रीमती सुनीता सिंह

संकलन एवं वर्तनीशोधनः
श्री जगदीश प्रसाद, श्री भारत देशमुख

सहयोगः
श्री सोमनाथ डनायक, श्री रवि पांडे (शोध-छात्र)
हिंदी साहित्यसभा परिवार - नम्रता, गुलशन,
सौरभ, मूलाराम एवं निशांत

छायाचित्रः श्री रवि शुक्ल

निदेशक की कलम से

भाषा प्राणियों के वैचारिक आदान–प्रदान का सशक्त माध्यम ही नहीं अपितु चिंतन–मनन एवं विचारों को लिपिबद्ध कर उन्हें मूर्तरूप प्रदान करने का महत्वपूर्ण साधन है।

संस्थान के निदेशक का पद–भार ग्रहण करने के पश्चात् जब हमें मालूम हुआ कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर राजभाषा हिंदी के प्रशासनिक प्रयोग, प्रचार एवं प्रसार के प्रति गंभीर तो है ही साथ ही संस्थान में कार्यरत संकाय–सदस्यों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों की रचनात्मक प्रतिभा को निखारने के उद्देश्य से हर वर्ष 26 जनवरी एवं 15 अगस्त को नियमित रूप से एक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन भी कर रहा है; तो अति प्रसन्नता हुई। "अंतस्" का तीसरा अंक आपको प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। मैं इसके सभी रचनाकारों को बधाई देता हूँ और आग्रह करता हूँ कि संस्थान के सभी सदस्य इससे जुड़ें तथा इसी तरह से रचनात्मकता के विविध विधाओं में अपने सुरुचिपूर्ण लेख, कविता, कहानी आदि से सुस्ज्जित कर "अंतस्" को सही मायने में एक आदर्श साहित्यिक पत्रिका बनाने का संकल्प पूरा करें।

शुभकामनाओं सहित,

इं.मन्ना 16.1.13

इंद्रनील मन्ना
निदेशक

उपनिदेशक की दृष्टि में

हिन्दी साहित्य ने मानव–सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान और कला को न केवल सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है बल्कि आज भी अपने आंतरिक भाषा–गत सौंदर्य–बोध, रसात्मक भाव–भंगिमा और अभिव्यक्ति की विविधता से अनेक रूपों में प्रवाहमान है। भूमण्डलीकरण से उद्भूत विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व प्रस्फुटन तथा निरंतर बढ़ते प्रयोग के इस दौर में हिन्दी–भाषा को अभी अपनी उपादेयता और प्रयोजनमूलकता को प्रमाणित करने की महती आवश्यकता है।

हर्ष का विषय है कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए प्रतिबद्ध है तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वर्ष भर भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करता रहता है । हमें याद रखना होगा कि राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार का उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति विशेष का नहीं बल्कि हम सभी का सामूहिक एवं प्रशासनिक उत्तरदायित्व है ।

संस्थान के साहित्यिक गतिविधियों के गुलदस्ते में "अंतस्" का तीसरा पुष्प शामिल करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता महसूस कर रहा हूँ । संपादक मण्डल के सदस्यों, रचनाकारों एवं सभी पाठकों को नववर्ष की हार्दिक बधाई ! साथ ही पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि वे "अंतस्" के संपादक मण्डल को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित रोचक एवं ज्ञानवर्धक लेख प्रेषित करें; जिससे पत्रिका को और अधिक लोकप्रिय बनाया जा सके ।

शुभकामनाओं सहित,

सुरेश श्रीवास्तव

सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव
उपनिदेशक

संपादक की कलम से

प्रिय पाठक,

गणतन्त्र दिवस की बधाइयों के साथ अंतस् का यह तीसरा अंक आपको समर्पित है। मुझे यह कहते हुए हार्दिक प्रसन्नता है कि इधर राजभाषा प्रकोष्ठ को संस्थान के वृहद परिवार से श्रेष्ठ और उत्तम कोटि की रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। यह बात पद्य और गद्य दोनों विधाओं के लिए सही है। आप देखेंगे कि इस अंक में सम्मिलित सभी रचनाओं का स्तर किसी भी प्रकार से भारतीय साहित्य में प्रचलित मानदंडों से कम नहीं है। साथ ही हमने इस बार नए लेखकों को अधिक वरीयता दी है।

इधर संस्थान ने भी राजभाषा प्रकोष्ठ को एक उप प्रबन्धक का पद देकर और अधिक सुदृढ़ बनाया है। राजभाषा प्रकोष्ठ इसके लिए संस्थान का आभार व्यक्त करता है। साथ ही वायदा भी करता है कि भविष्य में राजभाषा प्रकोष्ठ संस्थान और समाज के लिए अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

पिछले दिनों देश में अनेकों ऐसी घटनाएं घटित हुई हैं जिन्होंने किसी भी संवेदनशील मानव को आवश्यक रूप से द्रवित किया है। हो सकता है कि हम में से किसी के भी पास उभरते हुए नए प्रश्नों का कोई सरल उत्तर नहीं हो। सामाजिक समस्याएँ सरल, रेखीय एवं गणित कि भांति स्पष्ट नहीं होतीं। तथापि, मैं आशा करता हूँ कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के सभी सदस्य इन समस्याओं के साथ एक सरोकार अवश्य महसूस करेंगे। अंततोगत्वा साहित्य के लिखने और पढ़े जाने के पीछे तमाम उद्धेश्यों में सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव और उनमें अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाए जाने के निमित्त प्रेरणा प्रदान करना भी तो एक प्रबल उद्धेश्य है। यह भी स्पष्ट हो रहा है कि समाज, राजनीति, संस्कृति, मूल्यों, धर्म, अर्थनीति और मानव मनोविज्ञान सभी एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मुझे विश्वास है कि अगले अंक में सम्मिलित करने के लिए अपनी सर्म्पूण रचनात्मकता के साथ विद्यार्थियों और संस्थान के अन्य सदस्यों की ओर से सुंदर, स्तरीय रचनाएँ प्राप्त होंगी जो संस्थान को इन सरोकारों से जोड़ने में सहायक होंगी।

विद्यार्थियों, लक्ष्य यह है कि हमें शुद्ध मानव धर्मिता से एक ऐसे मानव विज्ञान का निर्माण करना होगा जो मानव मूल्यों को समाज में स्थापित करे और सभी अस्मिताओं में मानव अस्मिता को सर्वोपरि शिखर पर स्थान देने में सक्षम हो। मैं आपके भीतर स्थित महामानव से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसा मानव विज्ञान हमारे तकनीकी परिसर से निकले और आपके द्वारा निकले। थोड़ी देर के लिये सोचें की यदि आप मानव पहले हो और बाकी सब कुछ बाद में, अर्थात् आप न स्त्री हैं और न पुरुष, न हिन्दू और न मुसलमान, न ऊंची जाति और न नीची जाति, न उत्तर से और न दक्षिण से, न बूढ़े और न युवा, न विद्यार्थी, न प्रशासक और न राजनीतिज्ञ तो आप कैसे जिएंगे और समाज के प्रति आपका रवैया क्या होगा? हम सब को एक मानव बनना है और इस संसृति को एक मानवाकार देना है। यही हमारी ऐतिहासिक भूमिका है।

आपके सुझाव आमंत्रित हैं।

नए वर्ष की शुभाकांक्षाओं सहित।

अरुण कुमार शर्मा

प्रोफेसर, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग

पाथेय

हिन्दी भाषा में 'पाथेय' शब्द का एक अर्थ भोजन–सामग्री भी है, जिसे पथिक अपने मार्ग में, अपने साथ लेकर जाता है। जीवन भी तो एक लंबी यात्रा है जिसमें व्यक्ति को नाना प्रकार के खट्टे–मीठे–कड़वे अनुभव होते रहते हैं; जिनसे कभी वह बहुत प्रसन्न और आह्लादित होता है और उसे एक सौगात के रूप में सदैव अपनी अभिज्ञा में सँजोकर रखना चाहता है तो कभी अपने अंदर टूटन और घुटन महसूस करता है । दु:ख के क्षण न चाहते हुए भी व्यक्ति के अवचेतन मन पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ जाते हैं जिनसे वह यदा–कदा भयभीत और विचलित होता रहता है। ऐसे में जब कोई दिव्य घटना जीवन में घटती है तो डरा और हारा हुआ व्यक्ति भी उस घटना से प्रेरित होकर उस क्षण को पूरी संवेदना और समग्रता के साथ जीवनपर्यंत अपने मानस पर अंकित ही नहीं कर लेता बल्कि बार–बार उससे प्रेरित और झंकृत होता रहता है। वस्तुत: व्यक्ति अपने अनुभव से ही बहुत कुछ जीवनोपयोगी सामग्री अर्जित कर लेता है। जो उसके लिए उसकी जीवन–यात्रा का 'पाथेय' बन जाती है। मैं इसमें सुखात्मक और दुखात्मक दोनों ही पहलुओं को शामिल करना चाहता हूँ कारण है कि दुखजनित पाथेय जहां जीवन के कठोरतम क्षणों में व्यक्ति को मजबूती से खडे रहने की जीवनदायिनी शक्ति प्रदान करते हैं वहीं सुखजनित पाथेय सुनहरे भविष्य की अवधारणा को समुन्नत करने की उड़ान का ठोस आधार मुहैया कराते हैं। आप अचरज कर रहे होंगे कि मैं कौन सी घटना की व्याख्या करना चाहता हूँ जिसमें सौभाग्य, तितिक्षा, स्नेह, तिरस्कार, उत्साह और भय आदि को इतनी आग्रह पूर्वक व्यक्ति के जीवन से जोड़ा जा रहा है ? तो मैं, साग्रह आपको बता देना चाहता हूँ कि मेरा ऐसा कोई ध्येय नहीं है कि अपने किसी निजी घटना से आपको व्यथित करूँ अत्युत; मैं आपको केवल अपना एक लघु! परंतु चमत्कृत कर देने वाला संस्मरण बताना चाहता हूँ और अपनी संवेदना से आपको जोड़ना चाहता हूँ। आग्रह बस इतना है कि जिस सहृदयता से मैं इसे आप तक संप्रेषित कर रहा हूँ उसी सहृदयता से यदि आप मेरे अनुभव का आस्वाद लेंगे तो मेरा प्रयास सार्थक होगा।

दरअसल पिछले कई महीनों से संस्थान का विद्यार्थी–प्रबंध–परिषद [STUDENTS' GYMKHANA] भारत गणराज्य के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम जी से, विद्यार्थियों एवं संकाय सदस्यों को संबोधित करने हेतु, निवेदन कर रहा था जिसे पूर्व राष्ट्रपति ने स्वीकार कर लिया और जब तिथि निर्धारित हुई तो दिन पड़ा बृहस्पतिवार, 25 अक्टूबर, 2012 संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर संजय गोविंद धांडे का कार्यकाल अंतिम चरण पर था, वर्तमान निदेशक की नियुक्ति पर राष्ट्रपति जी की मुहर लग चुकी थी, विद्यार्थीगण दशहरे की छुट्टी का आनंद लेने हेतु अपने–अपने गृहनगर प्रस्थान कर चुके थे और इन सबके साथ कदम से कदम मिलाती हुई ठंडक

हौले–हौले दस्तक दे रही थी कुल मिलाकर संस्थान का शैक्षणिक वातावरण शांत था। पूरा संस्थान पूरी चाक–चौबन्द व्यवस्था के साथ पूर्व राष्ट्रपति की मेहमानदारी के लिए पलकपांवड़े बिछाकर तैयार था। सर्वव्याप्त चिंता सिर्फ इस बात की थी कि कार्यक्रम के अंतिम चरण में, जब संस्थान के 1300 लोंगो की क्षमता वाले प्रेक्षागृह में, डॉ. कलाम संबोधित करेंगे तब उन्हें सुनने के लिए यथेष्ट श्रोता रहेंगे कि नहीं और इसी कार्यक्रम के संचालन का दायित्व मुझे सौंपा गया था। जाहिर है कि दशहरे का अवकाश सभी को व्यथित किए हुए था जिसमे मैं भी शामिल था। अब आप सोच रहे होंगे की इसमे अभूतपूर्व जैसा क्या है? दरअसल दोस्तों जिस शख्सियत को 30 से अधिक विश्वविद्यालयों ने डॉक्टरेट की मानद उपाधि से बिभूषित किया हो, भारत सरकार ने जिसे पद्मभूषण, पद्मविभूषण एवं भारतरत्न जैसे सर्वोत्तम असैनिक सम्मानों से अलंकृत किया हो, जिसने भारत के वैज्ञानिकों को चमत्कृत कर देनेवाला नजरिया प्रदान किया हो तथा जिसकी चार कृतियों [1. Wings of Fire, 2. India-2020,3. My Journey तथा 4. Ignited Mind]

को घर में रख लेने मात्र से ही हर भारतीय गौरव की अनुभूति करता हो और ऐसे महान विद्वान की सम्बोधन-सभा में [जहां देश-विदेश में ज्ञान-विज्ञान का परचम लहराने वाले अनेक वैज्ञानिक बतौर प्राध्यापक मौजूद हों] का संचालक के रूप में नेतृत्व करना वह भी इस प्रबल आशंका के साथ की प्रेक्षागृह में यथेष्ट श्रोता रहेंगे की नहीं आप सहज ही मेरी मनोदशा का आंकलन कर सकते हैं। यदि मैं यह कहूँ कि इससे पूर्व मैंने कभी ऐसी उत्कृष्ट जनसभा के समक्ष मंच पर खड़े होने की हिम्मत भी नहीं की थी तो झूठ नहीं होगा ।

बहरहाल! मैं आपको बताता चलूँ कि ऑडिटोरियम में डॉ. कलाम के आने का समय शाम पाँच बजे का निर्धारित था लेकिन किन्हीं कारणों से लगभग 20 मिनट की देरी से उनके आने की सूचना प्राप्त हुई थी। मैं मंच की व्यवस्था में मशगूल था कि अचानक मेरे मोबाइल पर अधिष्ठाता विद्यार्थी कार्य का फोन आता है । वे जानना चाहते थे की ऑडिटोरियम कितना भर चुका है? हमने बताया की लगभग 200 लोग आ चुके हैं। जाहिर है उन्हें भी शायद! पहली बार चिंता जरूर हुई होगी; लेकिन उस समय किया ही क्या जा सकता था "होइहैं उहै जो राम रचि राखा।" प्रेक्षागृह में सभी गणमान्य अतिथि के पधारने का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे कि सहसा हलचल हुई, सभी पदाधिकारी पहले से तयशुदा जिम्मेदारी के हिसाब से सतर्क होकर अपनी-अपनी जगह पर मुस्तैद हो चुके थे। मैंने भी घोषणा कर दी सभी लोग अपना मोबाइल बंदकर यथोचित स्थान ग्रहण कर लें। अभी हम सोच ही रहे थे कि क्या होगा यदि पर्याप्त लोग नहीं आए तो....कि मैंने देखा ऑडिटोरियम के सभी दरवाजों से बड़ी तेजी से लोगों का हुजूम घुसा और आनन-फानन, में परंतु बड़े ही सलीके से बिना किसी शोर-शराबे के, सारा का सारा ऑडिटोरियम अप्रत्याशित रूप से डॉ. कलाम के पधारने के चंद मिनट पहले ही खचाखच भर गया; यहाँ तक कि सैकडों लोग जहां भी जगह मिली ऑडिटोरियम की दीवार से सटकर खड़े हो गए। व्यवस्था में लगे लोग अचंभित थे, सुरक्षाकर्मी अवाक थे [बाद में पता चला की भीड़ इतनी ज्यादा थी की ऑडिटोरियम मे प्रवेश रोककर लोगों को लैक्चर-हॉल-कॉम्प्लेक्स में शिफ्ट करना पड़ा था जहां पहले से ही वैकल्पिक व्यवस्था के तहत सजीव -प्रसारण का बंदोबस्त किया गया था]। वस्तुत: श्रोताओं को लेकर सभी की आशंका निर्मूल साबित हो चुकी थी।

कुछ ही देर बाद ही ऑडिटोरियम के पोर्टिको में पूर्व राष्ट्रपति जी की कार रुकी। कार से उतरते ही डॉ. कलाम के मुँह से निकला **where to**? संस्थान के उपनिदेशक महोदय ने तत्परता से उनकी अगवानी की और उन्हें मंच तक लेकर आए। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनकी चाल-चपलता, बालसुलभ चितवन-चंचलता देखते ही पूरा प्रेक्षागृह एक सकारात्मक ऊर्जा से लबरेज़ हो चुका था; मुझे तत्काल एक कविता याद आयी-

आ रही रवि की सवारी ।
चाहता उछलूँ विजय कह, पर ठिठकता देखकर यह,
रात का राजा खड़ा है, राह पर बनकर भिखारी ।
आ रही रवि की सवारी।

आगे-सबसे-आगे चलते हुए मंच पर आते ही पूर्व राष्ट्रपति जी ने अपना हाथ उठाकर लोगों का अभिवादन स्वीकार किया। भूरे रंग के सूट में चिरपरिचित केशसज्जा के साथ 81 वर्ष के नौजवान डॉ. कलाम सभी के आकर्षण का केंद्र बने हुए थे। कार्यक्रम के अनुसार पूर्व राष्ट्रपति के साथ संस्थान के निदेशक प्रोफेसर संजय गोविंद धांडे, संस्थान के संचालक मण्डल के अध्यक्ष प्रोफेसर एम आनंदकृष्णन, अधिष्ठाता विद्यार्थी कार्य, प्रोफेसर अजयकान्ति घोष तथा विद्यार्थी प्रबंध-परिषद के अध्यक्ष श्री अभय जैन मंचासीन हो चुके थे। कैंपस स्कूल के बच्चों ने अत्यंत मधुर स्वर में माँ सरस्वती की वंदना "वर दे! वीणा वादिनी वर दे!" प्रस्तुत की और प्रेक्षागृह में उपस्थित सभी लोगों ने खड़े होकर माँ सरस्वती का अभिवादन किया। संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रो. धांडे के स्वागत-भाषण के पश्चात डॉ. कलाम ने घंटा बजा कर विद्यार्थी-प्रबंध-परिषद के स्वर्णजयन्ती वर्ष का शुभारंभ किया। अध्यक्ष, विद्यार्थी-प्रबंध-परिषद ने प्रबंध-परिषद की स्थापना एवं इसकी भविष्योन्मुखी योजनाओं से संबंधित रूपरेखा प्रस्तुत की और संचालक मंडल के अध्यक्ष ने गणमान्य अतिथि डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम का संक्षिप्त परिचय दिया। इन सारी औपचारिकताओं के पश्चात डॉ. कलाम ने अपना 37 मिनट का व्याख्यान दिया। अपने मंत्रमुग्ध कर देने वाले अंदाज में जहां डॉ. कलाम ने कानपुर शहर के जिलाधिकारी एवं पुलिस अधीक्षक को कानपुर शहर को स्वच्छ, खुशहाल बनाने की चुनौती दी वहीं संस्थान के विद्यार्थियों के सामर्थ्य और उपलब्धियों की प्रशंसा करते हुए आह्वान किया कि वे विचार करें..... कि भविष्य में वे किस उपयोगी खोज अथवा राष्ट्र-सेवा के लिए याद किया जाना पसंद करेंगे ? उन्होंने बताया कि "कल्पनाशक्ति से रचनात्मकता का सूत्रपात होता है, रचनात्मकता से विचार व्यापक बनते हैं, व्यापक और प्रौढ़ विचार से ज्ञान की समृद्धि होती है तथा अर्जित ज्ञान के सकारात्मक प्रयोग से ही मनुष्य महान बनता है।" विद्यार्थियों को शपथ दिलाने से पूर्व उन्होंने अपनी कविता "I am born with wings so I am not meant for crawling: I have wing's so - I will fly, I will fly and fly" को पढ़ा। श्रोताओं ने कविता- पाठ में डॉ. कलाम का अनुसरण करते हुए उज्ज्वल एवं खुशहाल भारत की परिकल्पना को साकार करने में सकारात्मक भूमिका निभाने का संकल्प लिया। कुल मिलाकर सारा अनुष्ठान निर्धारित मानदंडों के अनुसार बड़ी ही निष्ठा से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर की परंपरा का निर्वहन करते हुए सम्पन्न हुआ।

मौजू प्रश्न हो सकता है कि संस्मरण की रूप रेखा इतनी लंबी और घटना के महत्त्वपूर्ण अंश के वस्तु-चित्रण में केवल एक अनुच्छेद? दरअसल मित्रों मेरा अभिप्राय कुछ दूसरा है मैं तो आपका ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहता हूँ कि आज के भारत में जहां हर पढ़ा-लिखा अथवा गंवार व्यक्ति जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रांत,पार्टी जैसे किसी न किसी वाद से ग्रसित है वहीं ऐसा क्या है कि काश्मीर से कन्याकुमारी तक कच्छ से बंगाल की खाड़ी तक देश का हर नागरिक डॉ. कलाम को शिद्दत से प्यार ही नहीं करता बल्कि उन्हें देखना और उनके विचार

सुनना अपना परम सौभाग्य समझता है? मैंने मंच से देखा था और महसूस किया था कि श्रोताओं में ऐसे बहुत से लोग थे जो शायद ही डॉ. कलाम के अंग्रेजी में दिये गए संभाषण के किसी भी अंश को किसी भी रूप में समझ पाए होंगे, उसमें मेरी पत्नी भी शामिल थीं। मैंने जब उनसे पूछा कि आपको क्या अच्छा लगा या किस बात ने प्रभावित किया? तो बिना कोई क्षण गँवाए उन्होंने तपाक से कहा "डॉ. कलाम की सहजता, बच्चों जैसी चपलता एवं विशेषरूप से उनकी केशसज्जा ने बहुत प्रभावित किया, मैं तो केवल उस महापुरुष के दर्शन करने गई थी।"

दोस्तों मैं यह इसलिए बता रहा हूँ कि डॉ. कलाम का अभिव्यंजनाकौशल इतना सशक्त था कि कुछ श्रोता आँख बंद करके सुन रहे थे तो कुछ के मुँह खुले हुए थे, कुछ विस्फारित नेत्रों से डॉ. कलाम को अपलक निहार रहे थे तो कुछ उनकी सादगी और सहजता से सम्मोहित थे। यह करिश्माई व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि 1300 की क्षमता वाले ऑडिटोरियम में 1500 लोग दत्तचित्त होकर आध्यात्मिक आख्यान की तरह डॉ. कलाम के वक्तव्य का अवगाहन कर रहे थे।

आपको पता ही होगा कि हिन्दू धर्म में हल्दी–दूब, दही–अच्छत और रोली–चन्दन का बड़ा ही मांगलिक महत्त्व है। मैं समझता हूँ कि डॉ. कलाम हल्दी–दूब, दही–अच्छत और रोली–चन्दन की ही तरह भारतीय संस्कृति के मंगलमयी आस्वादन के मूर्त रूप हैं। जिस तरह से धीमी–धीमी आंच में शनैः–शनैः तपने के कारण दही में एकरूपता की स्थिरता आ जाती है और वह खटाई, मिठाई, लुनाई सभी स्वादों में समरस होकर एक विलक्षण आस्वादन कराती है, वस्तुतः सभी रसों को स्वयं मे समाविष्ट करती हुई वह क्षणिक उत्ताप अथवा द्रवण से अप्रभावित रहकर सौम्यता का सच्चे अर्थों में निदर्शन कराती है। उसी प्रकार डॉ. कलाम जन कल्याणकारी अंतरात्मा के सौम्य संवाहक हैं, भारतीय संस्कृति की विवर्तनशीलता तथा अंतर्ग्रहणशीलता के सच्चे प्रतिमान हैं। उनके अंतस में लपट नहीं, ज्वाला नहीं, दीप्ति नहीं परंतु एक ऐसा ताप है जो अनाचार के कठोर से कठोर पाषाण को भी पिघला देने की सामर्थ्य रखता है। यही कारण है कि मंच से संस्थान के संचालक मण्डल के अध्यक्ष प्रो. एम आनंदकृष्णन ने डॉ. कलाम को ऐतिहासिक पुरुष की संज्ञा देते हुए पुरजोर शब्दों में घोषित किया कि "भारत ने पूरी दुनिया को स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी और डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम जैसे तीन महापुरुष दिये हैं।"

मित्रों अभी कुछ दिन पहले की ही बात है मैंने एक परम ज्ञानी परंतु घोर हिंदुवादी पंडित से पूछा कि आप किसे अपना आदर्श मानते हैं ? यह लिखते हुए मुझे गर्व की अनुभूति हो रही है कि उस परम ज्ञानी पंडित ने बड़े अभिमान से बहुत ऊंची आवाज में कहा, "मैं डॉ कलाम को अपना आदर्श ही नहीं वरन् भारत की सांस्कृतिक विरासत का सच्चा और अभूतपूर्व संरक्षक मानता हूँ, जैसे हिमालय कह देने से केवल भारतवर्ष की भौगोलिक सीमा का ही स्मरण नहीं होता बल्कि भारत की पवित्रता और उसकी आध्यात्मिक ऊंचाई का भी भान होता है; वैसे ही डॉ. कलाम का स्मरण कर लेने मात्र से ही समग्र भारतीय ज्ञान–विज्ञान एवं संस्कृति का एक जीवंत, अपरिमित आदर्श खड़ा हो जाता है।"

दोस्तों ! हो सकता है कि आप हमारे विचारों से पूर्णतया सहमत न हों, यदि ऐसा है तो इसे केवल "स्वांतः सुखाय रघुनाथ गाथा" ही समझिएगा क्योंकि मैं कोई सधा–सधाया साहित्यकार नहीं हूँ। मैंने मंच पर व्यक्तिगत रूप से जो महसूस किया था। वही लिखा है। अंत में मैं बस यही कहना चाहता हूँ कि : जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ। सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ।।

धन्यवाद!

डॉ. वेदप्रकाश सिंह
उपकुलसचिव

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रति सदैव गंभीर रहा है। यह संस्थान भारतीय भाषाओं के तकनीकी विकास पर शोध-कार्य एवं अंग्रेजी से हिन्दी तथा हिन्दी से अंग्रेजी भाषा में मशीनी अनुवाद प्रक्रिया पर सॉफ्टवेयर का विकास कर इस दिशा में हमेशा से अग्रणीय भूमिका निभाता रहा है। राजभाषा हिन्दी की सेवा के इसी क्रम में वर्ष 2012 से संस्थान प्रत्येक वर्ष 26 जनवरी एवं 15 अगस्त को स्थानीय रचनाधर्मिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राजभाषा हिन्दी में साहित्यिक पत्रिका "अंतस्" का प्रकाशन कर रहा है। सर्व-विदित है कि किसी भी शैक्षिक संस्था के गुणात्मक विकास में उसके छात्र विशेष रूप से पूर्व छात्र, अहम् भूमिका निभाते हैं। पूर्व छात्र-छात्राओं से गुरूदक्षिणा के रूप में नियमित रूप से संस्थान को आर्थिक मदद मिलती है जिसे संस्थान अपने शिक्षण एवं शोध सुविधाओं को और अधिक सुदृढ़ बनाने में प्रयोग करता है।

पत्रिका के स्थायी स्तम्भ "गुरुदक्षिणा" शीर्षक के अंतर्गत हम प्रत्येक अंक में संस्थान के उन पूर्व छात्रों का परिचय पाठकों से कराते हैं जिन्होंने देश-विदेश में भारत एवं संस्थान का परचम लहराया है तथा अपने सहयोग से संस्थान के विकास को भी मजबूती प्रदान की हैं। पत्रिका के इस अंक में इस लेख के माध्यम से हम आपका परिचय संस्थान के पूर्व छात्र श्री कमलेश द्विवेदी से करवा रहे हैं। श्री द्विवेदी का जन्म बिहार के बक्सर जिले के एक छोटे से गाँव कैसठ मे हुआ था। कुशाग्र बुद्धि वाले श्री द्विवेदी बचपन से ही पढ़ने में तेज रहे हैं। उनके पिताजी स्व. श्री रामचन्द्र द्विवेदी संस्कृत के अध्यापक एवं गाँव के पुरोहित थे तथा उनकी माताजी स्व. श्रीमती ब्रज कुमारी द्विवेदी कक्षा पाँच में ही नेशनल मेरिट स्कॉलरशिप की विजेता रहीं हैं। उनके पिता ने सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में भी भाग लिया था। बचपन में श्री द्विवेदी के परिवार की आर्थिक स्थिति

श्री कमलेश जी के माता-पिता

बहुत अच्छी नहीं थी। लेकिन आठ भाई-बहन होने के बावजूद उनके पिता ने उनको बेहतर शिक्षा दिलाने का निर्णय लिया था। सन् 1971 में बिहार के सेकेन्ड्री स्कूल की बोर्ड परीक्षा में सर्वोच्च 20 विद्यार्थियों में स्थान पाने तथा सन् 1973 में पटना विश्वविद्यालय से सांइस की इण्टरमीडिएट परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने पर उन्हें पटना सांइस कॉलेज में बी.एस.सी. (भौतिक) में प्रवेश दिया गया था; परन्तु जैसे ही कॉलेज में वह अपनी पढ़ाई पूरी करने की ओर अग्रसर हो रहे थे तभी नियति ने एक रोचक मोड़ लिया। पूरे बिहार में उस समय जय प्रकाश नारायण (जेपी) आंदोलन ने अपना उग्र रूप धारण कर रखा था जिसके कारण छह महीने तक बिहार के सभी शिक्षण-संस्थानों को बंद करना पड़ा था। उसी समय श्री द्विवेदी ने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में प्रवेश लेने का मन बनाया जो एक ऐसा निर्णय था जिसने उनकी जिंदगी को हमेशा के लिए बदल दिया। सन् 1974 के ग्रीष्मकाल के दौरान श्री द्विवेदी ने संस्थान के विद्युत अभियांत्रिकी विभाग में सीधे प्रवेश के लिए आवेदन किया। पटना विश्वविद्यालय से सांइस की इंटरमीडिएट परीक्षा में सर्वोच्च स्थान हासिल करने के कारण उनको भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में सीधे प्रवेश मिल गया।

संस्थान में पाँच साल गुजारने के दौरान श्री द्विवेदी को एक ऐसी शिक्षा मिली जिसको उन्होंने जीवन भर के लिए अपना लिया। वह शिक्षा थी "कठिन परिश्रम -सतत् अध्ययन और तर्कपूर्ण चिंतन करना।" श्री द्विवेदी के व्यक्तित्व पर संस्थान के कई प्राध्यापकों की असाधारण छाप पड़ी, विशेषरूप से प्रोफेसर सी.एन.आर. राव की। उन्हें आज भी याद है कि प्रोफेसर सी.एन.आर. राव ने आर्गेनिक यौगिक के त्रि-आयामी नमूनों को प्रदर्शित करके व्याख्यान कक्ष में बैठी पूरी कक्षा को मंत्रमुग्ध कर दिया था।

संस्थान कैंपस प्लेसमेंट के माध्यम से रोजगार का प्रस्ताव प्राप्त होने के बाद श्री द्विवेदी के मन में अचानक एम-टेक करने का विचार आया और वह एम टेक की पढ़ाई करने के लिए ओटावा, कनाड़ा के कर्लटन विश्वविद्यालय पहुँच गए। वहाँ पर वह सन् 1991 तक रहे। इस दौरान उन्होंने दो कंपनियों में नौकरी भी किया। स्वदेश में बोधगया में कुछ समय बिताने के पश्चात उन्हें यू.एस.ए. के बोस्टन शहर में नौकरी मिल गई जिसके फलस्वरूप वह अपने परिवार सहित बोस्टन शहर में

स्थानान्तरित (शिफ्ट) हो गए। यह वही समय और स्थान था जहाँ से उन्होंने कॉरपोरेट जगत में ऊंची छलांग लगाई। 20 वर्ष तक अमेरिका के वैश्विक कॉरपोरेशन में मुख्य सूचना अधिकारी (सी.आई.ओ.) के रूप में अपनी सेवाए दीं तथा उत्तरी एवं दक्षिण अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया, एशिया तथा अफ्रीका में 15 से अधिक कंपनियों में ग्लोबल टेक्नॉलॉजी आर्गेनाइजेशन्स का नेतृत्व किया। श्री द्विवेदी को अमेरिका में उनके प्रवास के दौरान 'बिजनेस माइन्डिड विजनरी' तथा एक सफल परिणाम प्रदत्त सी.ई.ओ. के रूप में जाना गया।

श्री द्विवेदी खाली समय में साहित्यिक एवं आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन करते हैं और खासकर संस्कृत एवं हिन्दी–काव्य के शौकीन हैं। श्री द्विवेदी ने पाँच पुस्तकें लिखीं हैं जिनमें से दो पुस्तकों Meghadutam by Kalidas और Spirit of One का अनुवाद संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रकाशित भी हो चुका हैं।

श्री द्विवेदी असाधारण व्यक्तित्व के मालिक हैं वैश्विक स्तर पर विश्व के सर्वाधिक सफल मुख्य सूचना अधिकारी (सी.आई.ओ.) के रूप में उन्होने अपनी असाधारण छाप छोड़ी है। जिस समय श्री द्विवेदी अपने इस सफर को तय कर रहे थे तभी उनके कई लोगों से घनिष्ठ संबंध हो गए जो एक अमूल्य संपत्ति के रूप में आज भी उनसे जुड़े हुए हैं। इस संस्थान के साथ अपने संबंधों को अधिक प्रगाढ़ बनाने के उद्देश्य से श्री द्विवेदी ने निम्नलिखित इन्डाउमेंट चेयर तथा छात्रवृत्तियाँ स्थापित की हैं:

1.पंडित रामचन्द्र द्विवेदी चेयर – श्री द्विवेदी ने इस चेयर की स्थापना अपने पिता स्व. श्री रामचन्द्र द्विवेदी की याद में की है। यह चेयर संस्थान के प्रत्येक विभाग के ऐसे संकाय सदस्यों के लिए है जो भारत की सुरक्षा से जुड़े हुए विकास–कार्यों पर शोध–कार्य कर रहें हैं।

2.गार्गी, मैत्रेयी एवं लीलावती छात्रवृत्ति – श्री द्विवेदी ने यह तीनों छात्रवृत्तियाँ अपनी तीनों बेटियों के सम्मान में स्थापित की हैं। इन छात्रवृत्तियों के नाम हैं; स्वास्तिका द्विवेदी "गार्गी अवार्ड", कृतिका द्विवेदी "मैत्रेयी अवार्ड" एवं अनामिका द्विवेदी "लीलावती अवार्ड"। ये वार्षिक अवार्ड बी–टेक की पढ़ाई पूरी करने वाली छात्राओं को मेरिट के आधार पर प्रदान किए जाते हैं।

3.पंडित गिरीश रंजन एवं सुषमा रानी पाठक चेयर – का गठन श्री द्विवेदी ने अपने सास–ससुर की याद में किया है। श्री द्विवेदी का मानना है कि उनकी पत्नी उनकी जीवन यात्रा में बराबर की साझीदार रही हैं। अत: स्वाभाविक रूप से अपनी पत्नी को सम्मान देते हुए उन्होंने अपने सास–ससुर की याद में एक चेयर का गठन किया।

वस्तुत: संस्थान के पूर्व छात्रों द्वारा गठित इस प्रकार की चेयर एवं छात्रवृत्तियों से निश्चित रूप से संस्थान में शिक्षण एवं शोध–कार्यों को गति मिलती है जो संस्थान एवं देश दोनों के लिए ही फलदायक सिद्ध होती हैं। संस्थान अपने सभी

पत्नी एवं पुत्रियों के साथ कमलेश द्विवेदी

पूर्व छात्रों का आभारी है तथा आशा करता है कि पूर्व छात्र आगे भी इसी तरह से संस्थान की मदद करते रहेंगे। आशा है पूर्व छात्रों द्वारा प्रदत्त आर्थिक मदद से संस्थान के शिक्षण एवं शोध–कार्यों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक नई पहचान मिलेगी साथ ही साथ देश को बेहतर वैज्ञानिक एवं अभियंता भी मिलेंगे। अच्छे वैज्ञानिकों एवं अभियंताओं के शोध–कार्यों से देश में नई–नई प्रौद्योगिकी इजाद होगी जिसका लाभ आम लोगों को भी मिलेगा। आम लोगों की तरक्की से ही देश की तरक्की संभव है और देश की तरक्की से ही भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों जैसे अन्य संस्थानों की सार्थकता सिद्ध होती है।

अनुदित जगदीश प्रसाद
राजभाषा प्रकोष्ठ

सब धरती कागद करूँ, लिखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय।।

कबीर जी कहते हैं कि गुरु की महिमा अपरंपार है। सारी धरती को कागज बना लिया जाए, सारे वनों को कमल और सारे समुद्रों को स्याही बना ली जाए तो भी गुरु की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। अर्थात् गुरु की थाह कोई नहीं पा सकता।

जो मानुष गृह धर्म युत, राखे शील विचार।
गुरुमुख बानी साधु संग, मन वच सेवा सार।।

जो मनुष्य गृहस्थ धर्म का निर्वाह करने वाला और शिष्टाचारी है, जो गुरुवाणी का चिंतन–मनन और पालन करता है, जो सत्संग करता है और मन, वचन व कर्म से सज्जन पुरुषों की सेवा करता है, वह सच्चा गृहस्थ है और उसी का जीवन सार्थक है।

कबीरदास जी

सन् 1947 में हिन्दी साहित्य के प्रखर आंदोलनकारी कवि आदरणीय दुष्यंत कुमार ने एक कल्पना की थी:

"स्वप्न स्वर्ग की चाह करो मत ,
ठोकर खाकर आह भरो मत ।
नित अपने शत सत्कर्मों से,
भारत को प्रतिमान बना दो ।"

ऐसे ही स्वप्न को साकार करने की परिकल्पना और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का उत्कृष्ट प्रतिमान बनाने के संकल्प को लेकर वर्तमान निदेशक प्रोफेसर इंद्रानील मन्ना ने हाल ही में संस्थान के निदेशक पद का कार्यभार संभाला है। बेहद समृद्ध बंगाली परंपरा में पले-बढ़े, आकर्षक व्यक्तित्व के धनी डॉ. मन्ना बचपन से ही मेधावी छात्र रहे हैं। आप संस्थान के पूर्व छात्र होने के साथ-साथ एक अच्छे खिलाड़ी भी हैं और दुनिया भर में तकरीबन 70 से ज्यादा विश्वविद्यालयों में शोध और अध्यापन का कार्य कर चुके हैं।

हिन्दी साहित्य सभा के छात्र श्री निशांत एवं राजभाषा प्रकाशन परियोजना की उप-प्रबन्धक श्रीमती सुनीता के साथ अपने साक्षात्कार में प्रो. मन्ना ने बड़े सहज और स्पष्ट रूप से बदलते परिवेश में छात्रों और प्राध्यापकों की बदलती भूमिकाओं, शिक्षण-प्रशिक्षण के नए प्रतिमानों और संस्थान की भावी योजनाओं पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

प्रस्तुत है साक्षात्कार के प्रमुख अंश........

सुनीता सिंह : सर, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर की गणना राष्ट्रीय महत्त्व के एक संस्थान के रूप में ही नही बल्कि देश में तकनीकी शिक्षा के सिरमौर के रूप में भी की जाती है। इस संस्थान की उपयोगिता और महत्त्व विश्वस्तर पर भी स्थापित हो ऐसी योजना नि:सन्देह आपके मन में भी होगी; कृपया इस दिशा में आप अपनी प्राथमिकता से हमें अवगत कराएं।

उत्तर : भारत के पहले प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू जी का सपना था कि देश के सभी भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान शिक्षा के भव्यतम मंदिर बनें और विश्व-स्तर पर तकनीकी शिक्षा के नये-नये प्रतिमान गढ़े जिससे भविष्य में होने वाले परिवर्तनों को सबल नींव प्रदान किया जा सके। स्थापना की दृष्टि से भारतीय प्रौद्यगिकी संस्थान कानपुर देश का चौथा राष्ट्रीय महत्त्व का संस्थान है। स्थापना के 50 वर्ष बाद अब हमें पुनरावलोकन करने की आवश्यकता है कि अभी तक क्या-क्या कर पाये हैं और बदलते भूमंडलीय जरूरतों के मद्देनजर ये भी देखना होगा कि आगे और क्या-क्या कर सकते हैं ? यद्यपि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यहाँ के छात्रों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह संस्थान क्लास-रूम-टीचिंग के लिए एक बेहतरीन संस्थान है परंतु अभी हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि भारतीय प्रौद्यगिकी संस्थान कानपुर विश्व के पहले सर्वोत्तम 200 शिक्षण-संस्थानों, फिर 100 और उसके बाद सर्वश्रेष्ठ 20 संस्थानों में शुमार हो। इस लक्ष्य को पाने के लिए कई स्तर पर बहुत सारे प्रयास करने होंगे। अब समय आ गया है कि हम स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा और शोध-कार्यों पर अधिक ध्यान दें। वैसे तो इस संस्थान में तमाम छोटी-बड़ी परियोजनाओं पर शोध कार्य हुए हैं और आज भी हो रहे हैं लेकिन इनके सब लोगों के संज्ञान में न आने के कारण आम जनता फायदा नहीं उठा पाती। कई बार हमसे ये प्रश्न किया जाता है कि सरकार हमें शोध-कार्यों के लिए करोड़ों का धन उपलब्ध कराती है लेकिन उन शोध-कार्यो से समाज को कितना लाभ पहुँचता है? तो अभी हमें सामाजिक सरोकार वाले शोध करने होंगे जिनसे सीधे तौर पर समाज को लाभ मिले। अत: अब जरूरी हो गया है कि हम योजनाबद्ध तरीके से बड़े प्रोजेक्ट पर शोध करें जो उपभोक्ता के सभी समस्याओं का निदान कर सके। जुगनू सैटेलाइट इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास था और उसे पहचान भी मिली है। लेकिन हमें इससे भी आगे बढ़ने की जरूरत है। हम चाहते हैं कि सर्वांगीण सामाजिक विकास की दिशा में हम ऐसी तकनीक का विकास करें जो व्यापक परिवर्तन लाने में सक्षम हो और पूरा देश उस पर गर्व करे। लेकिन इसके लिए संयुक्त और समर्पित प्रयास की आवश्यकता है। हमें देखना होगा कि हमारा मजबूत पक्ष क्या है और कमजोर बिन्दु क्या हैं? इन दोनों पहलुओं को ध्यान में रखकर ही योग्य जन-शक्ति को विकसित करना होगा।

हम चाहते हैं कि हमारे शोध-छात्रों के लिए ऐसी व्यवस्था बने कि वे पी-एच. डी. करने के पश्चात संस्थान में ही कम से कम दो वर्ष रहकर अध्यापन का अनुभव प्राप्त करें और शोध परियोजनाओं में प्राध्यापकों के सहयोगी बनें जिससे यहाँ के प्राध्यापकों को शोध-कार्य करने के लिए पर्याप्त समय मिल सके। उल्लेखनीय है।

कि छात्रों की वर्तमान संख्या को देखते हुए जहाँ संस्थान में 750 –800 प्राध्यापक होने चाहिए थे, वहीं 400 से भी कम प्राध्यापकों का होना चिंताजनक है। इसलिए पहली प्राथमिकता यह होगी की हम इस वर्ष कम से कम 100 प्राध्यापकों की नियुक्ति करें।।

एक नयी पहल–'प्रौद्योगिकी ग्राम की स्थापना' पर विचार–विमर्श चल रहा है। हम चाहते हैं कि संस्थान के आस पास ही एक ऐसा आदर्श गाँव बसाया जाये जहाँ सड़क, मकान, बिजली, पानी, बाग–बागीचा सभी कुछ इस संस्थान के अन्दर ही विकसित की गयी तकनीकों से निर्मित हो और इसे बाहरी दुनिया के लोगों के लिये खोल दिया जाये ताकि वो आकर उन तकनीकों को बेहतर तरीके से समझें और प्रयोग कर लाभान्वित हो सकें। बेहतर व्यावसायिक दक्षता के लिए छात्रो को औद्योगिक जगत से मुखातिब किया जाना भी बहुत जरुरी है, इसलिए इस दिशा में भी काम किया जायेगा । नोएडा [दिल्ली] में संस्थान के विस्तार केंद्र का निर्माण–कार्य चल रहा है इस केंद्र में 'उद्योग–उपवन' बनाने की योजना है, जहाँ देश के तमाम बड़े उद्यमी अपनी–अपनी कम्पनियों के स्थानीय केंद्र स्थापित कर सकें। साथ ही साथ विदेश में भी संस्थान की साख बढ़ाने के लिए ब्यूयॉर्क में एक कार्यालय शुरू किया जा चुका है, जो एक महात्वाकांक्षी और बहुउद्देशीय योजना है। इससे बड़ा फायदा तो ये होगा कि हमें उच्चकोटि के प्राध्यापकों की नियुक्ति में सुगमता होगी और दूसरे ये कि वहां के उद्योग जगत से हमारे सम्बन्ध और मजबूत होंगे।

निशांत : सर! आज समाज का हर व्यक्ति बाजारवाद से प्रभावित है और ऐसे में विद्यालयों,महाविद्यालयों और आई आई टी कानपुर जैसे तकनीकी संस्थानों में नैतिक शिक्षा को आप कितना महत्त्व देते हैं?

उत्तर : नैतिक शिक्षा की शुरुआत तो बचपन से ही होती है और होनी भी चाहिए। व्यक्ति का संस्कार जितना प्रबल होता है उसका चरित्र उतना ही उच्च होता है। निश्चित रूप से आज की तारीख में नैतिक मूल्य बहुत महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। हम समाज में साफ–साफ देख रहे हैं कि इन मूल्यों का पतन हो रहा है इसे रोकना होगा। यदि हम आदर्श जीवन की बात करते हैं तो हमें इस दिशा में हर स्तर पर प्रयत्न करने की भी बहुत आवश्यकता है। जहां तक विद्यालयों,महाविद्यालयों और आई आई टी कानपुर जैसे तकनीकी संस्थानों में नैतिक शिक्षा का प्रश्न है तो सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि छात्र यहाँ पढ़ने के लिए आते हैं और अध्यापक पढ़ाने के लिए । इसलिए उनका सम्बन्ध पुत्र और पिता जैसा होना चाहिए और तभी हम उज्ज्वल और खुशहाल समाज की कल्पना को साकार कर सकते हैं।।

सुनीता सिंह : सर! आप किसे अपना प्रेरणा–स्रोत मानते हैं और क्यों?

उत्तर : मेरे पिता कलिंग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, उसी विश्वविद्यालय के परिसर में मेरा बचपन बीता । मैंने उनका जीवन भर अनुकरण किया है और वो ही मेरे प्रेरणा–स्रोत हैं ।अध्यापन–कार्य से जुड़ना भी उन्हीं से प्रेरित निर्णय था । देवी सरस्वती में मेरी अटूट श्रद्धा है । पश्चिम बंगाल में एक रस्म होती है – "हाथेखोड़ी" जिसमें पहली बार बच्चे को लिखना सिखाया जाता है। मेरे घर में पहली बार उस रस्म को मेरे पिताजी ने मेरे लिए की थी और तब से मैं देवी सरस्वती की पूजा जरुर करता हूँ। मैं महात्मा गांधी जी के आदर्शों से प्रेरित होता हूँ उन्होंने ने कहा था कि आप जो कुछ भी करें उसे करने का निर्णय इस कसौटी पर तय करें कि वैसा करने से समाज के सबसे गरीब तबके पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इसके अतिरिक्त मैं विशेष रूप से आचार्य रवीन्द्र नाथ टैगोर और स्वामी विवेकानन्द से बहुत प्रभावित होता हूँ कारण कि जहां आचार्य रवीन्द्रनाथ टैगोर में एकसाथ विविध बुद्धिवैभव और कलाओं का अभूतपूर्व संगम दिखता है तो वहीं मेरे विचार से स्वामी विवेकानन्द युवा पीढ़ी के लिए सबसे उपयुक्त आदर्श हैं।।

सुनीता सिंह : सर! हम चाहते हैं कि "अंतस" पत्रिका के माध्यम से पाठक आपकी पृष्ठभूमि एवं शैक्षणिक उपलब्धियों से भी रूबरू हों, इसलिए कुछ अपने जीवन एवं अभिरुचियों के बारे में बताइये ?

उत्तर : मैंने शुरुआती पढाई बंगाली माध्यम से पश्चिम बंगाल बोर्ड से की। धातुकर्म अभियांत्रिकी में बी. ई. और उसके बाद आई आई टी कानपुर से एम. टेक. की पढाई की। पढाई के अलावा मैं खेल में भी आगे रहता था । मैं नगर और कॉलेज स्तर पर क्रिकेट टीम का कप्तान रहा । मैंने नवम्बर,1988 में अपना शोध–कार्य पूरा किया और उसके बाद से देश विदेश में मैंने अपनी विधा के तकरीबन 70 से ज्यादा संस्थानों में अध्यापन–कार्य किया है । मैंने बहुत से प्रायोजित शोध–कार्य किये हैं जिनकी कुल लागत तकरीबन 15 से 16 करोड़ के बीच होगी।

निशांत : सर! यूँ तो संस्थान में राजभाषा नीतियों का यथाशक्ति अनुपालन हो रहा है तथापि, संस्थान में राजभाषा हिन्दी का प्रचार–प्रसार एवं प्रयोग और बढ़े तथा राजभाषा विभाग द्वारा जारी नीतियों का दृढ़ता से अनुपालन हो, इसके लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

उत्तर : प्रसन्नता की बात है कि संस्थान में राजभाषा नीतियों का यथाशक्ति अनुपालन हो रहा है। मैंने देखा है कि संस्थान का राजभाषा प्रकोष्ठ बड़ी निष्ठा से राजभाषा हिन्दी के कार्यों की देख–रेख कर रहा है । मैं चाहूँगा कि संस्थान के सभी अधिकारी, कर्मचारी इस दायित्व को और महत्त्व देते हुए राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3 (3) में निर्दिष्ट सभी नियमों का दृढ़ता से अनुपालन सुनिश्चित करें।

अंत में मैं राजभाषा प्रकोष्ठ और अंतस पत्रिका से जुड़े सभी सदस्यों को अपनी शुभेच्छा देता हूँ।।

धन्यवाद!

आपके चुम्बकीय व्यक्तित्व की चर्चा न केवल आईआईटी कानपुर बल्कि इसके इतर भी है। आपकी जिंदगी से जुड़े आयामों को जानने के लिए लोग सदैव उत्सुक रहते हैं। कृपया अपने जिंदगी से जुड़े अनुभव हमारे साथ बाँटे।

देखिए मैं एक बहुत ही सामान्य शहर पटना से हूँ, न ज्यादा बड़ा है, न ज्यादा छोटा और वहाँ पर एक सामान्य से स्कूल में हिंदी भाषा में पढ़ाई हुई। स्कूल के दिनों में पढ़ने में मन नहीं लगा करता था, इसलिए परीक्षाफल प्राय: खराब ही रहता था और घर में डाँट पड़ा करती थी, मार पड़ा करती थी। घरवाले काफी चिंतित रहा करते थे कि बड़ा होकर क्या करेगा?कैसे अपना जीवन यापन करेगा?पर एक बार जब दसवीं पास करने के बाद पटना साइंस कॉलेज में पहुँचे तो वहाँ का जो माहौल था, वहाँ पर जो शिक्षक थे, उन्होंने पढ़ाई के प्रति इतनी रूचि जागृत की कि उसके बाद से बिल्कुल जीवनधारा बदल गयी। मेरा यह अनुभव रहा है कि स्कूलों में अक्सर जो माहौल रहता है वह प्रतिभाशाली छात्रों की सोच और सामर्थ्य को कुंठित कर देता है। प्राय: उनकी प्रतिभा में निखार और रचनात्मकता की भावनाएं भी खत्म हो जाती हैं। ऐसे दौर में फिर जो लोग छूट जाते हैं, वे छूट ही जाते हैं। ऐसे में हमारे देश का बहुत नुकसान हो रहा है। बहुत सारी जनशक्ति जो रचनात्मक कार्यों में लग सकती थी, वह व्यर्थ जा रही है, हमारे इसी रुढ़िवादी स्कूल–पद्दति के कारण।

हम जानना चाहेंगे कि शोध में भारतीय छात्रों की घटती दिलचस्पी का आप क्या कारण मानते हैं?क्या इसके लिए संस्थान जिम्मेदार है या सरकारी नीतियाँ इसका निदान किस प्रकार हो सकता है?

देखिए शोध ऐसा विषय है जिसे हम नीतियों से निर्देशित नहीं कर सकते हैं। शोध करने की एक प्रवृत्ति होती है और जिसमें वह प्रवृत्ति है, शोध उसे ही करना चाहिए। अत: अगर हम ऐसी नीतियाँ बनाते हैं कि जिससे बहुत सारे लोग शोध क्षेत्र में आ जाएं तो यह भी उचित नहीं। हाँ हमारी नीतियाँ ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें शोध की प्रवृत्ति हैं, उसे और मौके दिये जाएं, सारी सूचनाएं उपलब्ध करायी जाएं और हरसंभव माहौल दिया जाए। अब यह कैसे होगा? इसके लिए जरूरी है कि हमारी स्कूली पद्दति में लचीलापन आये, बेवजह जो ज्यादा से ज्यादा अंक हासिल करने पर जो जोर दिया जाता है, वह कम हो। हमें ऐसी योजनाएं बनानी पड़ेंगी कि ऐसे प्रतिभाशाली छात्रों को शुरुआत से अवसर और मौके मिलते रहें। ऐसे छात्रों को समुचित सम्मान और पुरस्कार मिलना चाहिए, तभी हम ज्यादा से ज्यादा लोगों को शोध के क्षेत्र में आकृष्ट कर पायेंगे। अब शोध में घटती दिलचस्पी का क्या कारण है? तो इसके कई कारण हो सकते हैं–आर्थिक कारण, सामाजिक कारण, शोध में कार्यरत लोगों को जीवनयापन के बहुत बेहतरीन साधन न मिलना। ऐसा लोगों को लग सकता है, पर मूल बात यह है कि शोध में जो आनंद है वह और कहीं भी नहीं है। नई चीज की खोज का आविष्कार मैंने किया है। यह इतना आनंददायी होता है, जो शब्दों में बयां नहीं हो सकता। जरूरत है तो बस इस बात की कि छात्रों में आनंद की इस भावना का बोध शुरुआत से ही कराया जाए ताकि वह शोध के क्षेत्र में आने के लिए उतने ही उत्साहित हों, जितना की अन्य क्षेत्रों के लिए होते हैं।

समय–समय पर बड़े–बड़े उद्यमी जैसे: अजीम प्रेमजी, नारायण मूर्ति इत्यादि आईआईटी की गुणवत्ता पर प्रश्नचिन्ह लगाते आ रहे हैं। अपने अनुभवों के आधार पर हमें बतायें कि ऐसी टिप्पणियों को सुनकर आप कैसा महसूस करते हैं?

ऐसी टिप्पणियों को सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगता है।

आपने एक दोहा सुना होगा –

"निंदक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।"

अगर हर जगह हमारी प्रशंसा ही होती रही, तो फिर हमारे अंदर अहंकार की भावना पैदा हो जाएगी। किसी भी संस्थान के विकास के लिए प्रशंसा और आलोचना दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। तो जब भी ऐसी आलोचनाएं होती हैं, तो हमें चुनौती मिलती है, कि अभी हमें और आगे बढ़ना है, गुणवत्ता को और बढ़ाना है हमारा तो एक बहता प्रवाह है, यहाँ कोई ठहरा हुआ पानी नहीं है और गुणवत्ता एक ऐसी चीज है जो सदैव बढ़ायी जा सकती है इसका कभी अंत नहीं होता। अत: अगर किन्ही महानुभाव को लगता है कि आईआईटी समाज को उतना योगदान नहीं दे पा रही है, तो उनकी ये टिप्पणियाँ स्वागत योग्य हैं और हम सब सदैव अपनी गुणवत्ता बढ़ाने में, चीजों को और बेहतर करने में लगे रहते हैं। चाहे आईआईटी के छात्र हों या फिर यहाँ के शिक्षक हों या कि व्यवस्थापक हमारे प्रयास रंग ला रहे हैं। हाँ इनमें वक्त जरूर लगेगा पर हमारी ओर से तत्परता में कोई कमी नहीं आनी चाहिए। आई आई टी तकनीकी के क्षेत्र में जो कार्य कर रही है उसका सीधा लाभ ग्रामीण समाज को मिलना चाहिए। लोगों को हमसे बहुत अपेक्षाएं हैं, शायद इसलिए उन्हें कभी ऐसा लग सकता है कि हम पूरे प्रयास नहीं कर रहे हैं, पर हमारे प्रयास निरंतर जारी हैं और सकारात्मक दिशा में परिवर्तन अवश्य होते रहेंगे।

आईआईटी कानपुर में कार्यरत राष्ट्रीय सेवा योजना ने काफी सराहनीय काम किया है पर अभी भी हमारे देश में कई ऐसे लोग हैं जो इन योजनाओं से महरूम हैं। आपके दृष्टिकोण से राष्ट्रीय सेवा योजना तथा अन्य ऐसी योजनाओं को किस तरह स्थापित करना चाहिए कि इसके प्रभाव दूरगामी हों?

देखिए राष्ट्रीय सेवा योजना एकमात्र योजना नहीं है जो सामाजिक विकास की बात करती हो। ऐसी ढ़ेर सारी योजनाएं हैं जो इस तरह की समस्याओं के निदान के लिए बनी हैं और इन सब योजनाओं से सही मायनों में हर वर्ग के

है। हमारा देश काफी बड़ा है यहाँ पर समस्याएं भी उतनी ही बड़ी हैं। सामाजिक समस्याएं हैं, आर्थिक समस्याएँ हैं, शैक्षिक अवसरों की समस्याएं हैं। काम ऐसा है कि कोई एक संस्थान या योजना इन सभी समस्याओं का पूरा निदान नहीं कर सकता। जरूरत है कि हम सभी भारतीय अपने देश के साथ जुड़ाव महसूस करें। एक ऐसा तत्व हमारी सभी योजनाओं और हमारे अंदर समाहित हो कि हम जिस समाज में रहने की कल्पना करते हैं यदि उसमें आस-पास के लोग परेशानियों से पीड़ित हैं, कराह रहे हैं और हम चैन की नींद सोये हैं तो यह जायज नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिए। हमारे पास काफी योजनाएं हैं पर वास्तविकता में इन योजनाओं का लाभ सही व्यक्ति तक नहीं पहुँच पाता है। इसका कारण है कि हमारे योजनाकारों में देश के साथ उस जुड़ाव की भावना की कमी है। उनमें उस पीड़ा का भाव नहीं है जो समाज में कई वर्गों को ग्रसित किये हुए है। अगर हम सभी अपने आस-पास की समस्याओं से परिचित होकर एक दूसरे की पीड़ा का अनुभव करें तो हमारी सभी योजनाएं सकारात्मक नतीजे देंगी।

भारतीय शिक्षा-प्रणाली में इंजीनियरिंग, प्रबंधन और मेडिकल संकाय काफी हद तक हावी हो गये हैं। ऐसे परिवेश में अन्य क्षेत्रों में रूचि रखने वाले छात्रों के लिए अवसरों और संस्थानों की भारी कमी है। इस समस्या को दूर करने के लिए आपके पास क्या सुझाव हैं ताकि ऐसे छात्रों को अपनी रूचि के साथ समझौता न करना पड़े?

देखिये बड़ी समस्या यह है कि हम छात्रों को वैसा वातावरण ही नहीं दे पाते कि उन्हें स्वयं भी पता चल सके कि उनकी रुचि आखिर किस क्षेत्र में हैं। कक्षा एक-दो से ही उन पर अधिकतम अंक लाने का बोझ आ जाता है फिर धीरे-धीरे बोर्ड की परीक्षाएं और अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में अच्छा करने का दबाब, ऐसे माहौल में छात्रों की बहुमुखी प्रतिभा कुंठित हो जाती है। आज जो इंजीनियरिंग मेडिकल और प्रबंधन का वर्चस्व है वह खेद का विषय जरूर है क्योंकि जहाँ एक ओर हमें डाक्टर्स चाहिए, इंजीनियर्स और मैनेजर्स चाहिए, वहीं हमें अन्य क्षेत्रों के भी विशेषज्ञ चाहिए। जो मनुष्य की कोमल भावनाएं हैं, उनको तो निखारने की सख्त जरूरत है। जब तक हम इन मूलभूत भावनाओं को तिरस्कृत करते रहेंगे और सब कुछ तकनीक के सहारे आगे बढ़ाने की कोशिश करेंगे तब तक एक अच्छा सामाजिक परिवेश मिलना बेहद मुश्किल है। अब इस समस्या का हल कैसे होगा?तो जरूरी है कि बाल्यकाल में, किशोरावस्था में ऐसे अवसर प्रदान करें, ऐसे वातावरण प्रदान करें, जिससे यह तो पता चले कि जिसकी रुचि बहस करने में ज्यादा है, उसे वकालत करनी चाहिए, जिसकी रूचि मशीनों के तोड़-फोड़ में ज्यादा है उसे इंजीनियर बनना चाहिए, जिसकी रूचि सबको एक साथ लेकर काम करने में है, उसे मैनेजर बनना चाहिए इत्यादि। फिर यहाँ पर चिह्नित किये गये लोगों को उचित अवसर प्रदान किये जाने चाहिए ताकि उनका समुचित विकास हो; ऐसी कुछ व्यवस्था हमारे समाज में होनी ही चाहिए।

इंजीनियरिंग के प्रति बढ़ते रुझान को देखते हुए सरकार द्वारा 8 नए आईआईटी के स्थापना की घोषणा की गई थी क्या आपको नहीं लगता है कि नए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों को एक सशक्त संस्थान के रूप में उभरने में अभी काफी वक्त लगेगा जो सरकारी प्रयोजन की सीधे तौर पर नाकामयाबी है? इस पर आपकी क्या राय है?

आठ नई आईआईटी खुली और उनको सशक्त रूप से उभरने में निश्चत तौर पर वक्त लगेगा और इसके पीछे क्या योजना रही होगी या क्या सोच रही होगी ये तो पता नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि छात्रों में जो तनाव उत्पन्न हो रहा था आई आई टी में दाखिला ना होने की वजह से उसका एक तरह से निदान हो गया है। ऐसा नहीं है कि आई आई टी के बाहर कोई विकल्प नहीं है। जो इंजीनियर बनना चाहते हैं उनका आई आई टी का लेबल लग जाने से ही कुछ नहीं होगा। जो छात्र आई आई टी में आते हैं वे भी कई बार सफलता का दूसरा चरण हासिल नहीं कर पाते हैं। आई आई टी में आने के बावजूद उनको खुद को स्थापित करने में समय लगता है और जो छात्र आई आई टी में नहीं भी आते हैं उनमें भी कइयों का करियर बहुत ही अच्छा होता है। सच पूछा जाए तो न्यूक्लियर साइंस या स्पेस टेक्नालॉजी की अगर बात करें तो हमने जो बुलंदी के साथ झंडे गाड़े हैं तो उनमें भी आई आई टी के बाहर के संस्थानों का काफी योगदान रहा है। ऐसा नहीं है कि आई आई टी में आ गए तो अब सब कुछ सही हो गया है। लेकिन किसी कारण से कहीं न कहीं ऐसी बात जरूर है कि अगर आई आई टी में एडमीशन नहीं हुआ है तो सारा जीवन ही व्यर्थ हो गया है। हर संस्थान की एक पहचान होती है। जिसके प्राध्यापक जितनी पारदर्शिता एवं मेहनत के साथ उसको आगे ले जायेंगे, उस संस्थान का उतना ही अच्छा परिणाम देखने को मिलेगा।

प्राय: आजकल के छात्रों में यह प्रवृत्ति देखी गयी है कि आईआईटी या फिर अन्य संस्थानों से पढ़कर वे विदेश का रूख कर लेते हैं। अपने हितों का त्याग किये बगैर आज के छात्र राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य के साथ कैसे न्याय कर सकते हैं?

आज कल ग्लोबल सोसाइटी, ग्लोबल विलेज जैसी बातें हो रही हैं। हमारी नजर में विदेशों में जाने में कोई हर्ज नहीं है मगर विदेश में जाकर भी भारत के साथ मन का जुड़ाव नहीं छोड़ना चाहिए। यदि वहाँ के विकसित संस्थान से उत्कृष्ट ज्ञान और धन प्राप्त करके उसका लाभ भारत में पहुँचाते हैं तो बहुत अच्छा है। अगर हम कुछ ऐसा कर रहे हैं जिसके कारण भारत को नुकसान हो रहा है तो उनको करने से हमें बचना होगा। जितना जुड़ाव हमारा हमारे समाज से होगा, हमारे राष्ट्र से होगा, हमारी धरती से होगा हम भारत को उतना ही मजबूत बना पाएंगे। विदेश में जाने में कोई बुराई नहीं है मगर हमारे देश के साथ हमारी जो जड़े जुड़ी हुई हैं उनमें मट्ठा नही डालना है।

प्राय: प्रथम वर्ष में छात्रों को मूल विज्ञान से संबंधित विषय पढ़ायें जाते हैं। क्या आपको नहीं लगता है कि प्रथम वर्ष में छात्रों को उनके संकाय से संबंधित विषय भी पढ़ाने चाहिए। इससे हमारे पाठ्यक्रम को एक नयी दिशा और दशा मिलेगी। इस पर आपकी क्या टिप्पणी है?

देखिए मेरा विषय तो आप जानते हैं, मूलविज्ञान का विषय है, भौतिकी का विषय है तो मैं कैसे कह दूँ कि मूलविज्ञान को कम पढ़ाओ। बात दरअसल ये है कि बारहवी के बाद जब छात्र हमारे पास आते हैं तो समस्या यह नहीं है कि उनको क्या मालूम

हैं और हम क्या मालूम कराना चाहते हैं या हम उनके ज्ञान को और कितना बढ़ाना चाहते है। समस्या यह है कि हम जो उनको शिक्षा देना चाहते हैं उसके लिए वो अपने स्कूल के दिनों में दिमागी तौर से विकसित नहीं हो पाते हैं तो हम प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में इनकी दिमागी सोच को विकसित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि हम एक बरतन में पानी भरना चाहें मगर उसमें छेद हो और हमनें उसे ठीक तरीके से बंद नहीं किया हो तो पानी उसमें ठहरने वाला नहीं है। इसीलिए किसी विशेष संकाय से संबंधित जो सोचने का तरीका होना चाहिए, जो अभ्यास होना चाहिए, उन सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर ही प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम को विकसित किया जाता है।

सर अंत में हौसला अफ़ज़ाई के लिए आपके द्वारा संस्थान के छात्रों के लिए कोई प्रेरणादायी संदेश।

आईआईटी कानपुर के छात्रों! आप लोगों को बहुत अच्छा अवसर मिला है, बहुत अच्छे परिसरवासी यहाँ मिले हैं। अत: इसका भरपूर लाभ उठाएं, अपने विकास के लिए, अपने समाज तथा राष्ट्र के विकास के लिए। किसी भी कीमत पर ईमानदारी का साथ न छोड़े, ईमानदारी ही मूलमंत्र है, विचारों की ईमानदारी, जीवन की ईमानदारी। कोई भी ऐसा कार्य न करें जिसके लिए अंत में जब आप अपने जीवन का मूल्यांकन करने बैठे तो आपको खुद से ही शर्मिंदा होना पड़े। इस बात का आप केवल ध्यान रखें, कि आप बहुत अच्छी जगह पर हैं और आपके पास बहुत अच्छे अवसर हैं। आप सभी छात्रों को मेरी ओर से बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

साक्षात्कारकर्ता - अभिषेक गौरव, अंकित जालान

समय ही सबसे बड़ा धन है

संसार में उन लोगों ने उन्नति की है, जिन्होंने समय का सदुपयोग किया है। सभी शास्त्र और धर्म ग्रंथ समय के मूल्य के बारे में एकमत हैं। हमारे ऋषि-मुनियों की दिनचर्या एक निश्चित पद्धति के अनुसार चलती थी। यहाँ तक कि पूरे जीवन को भी उन्होंने चार आश्रमों में विभाजित कर रखा था। प्रत्येक आश्रम का अपना एक निर्धारित कार्य था। आश्रम विशेष में उस निर्धारित कार्य को पूरा करने के लिए हमारे मुनियों ने स्पष्ट निर्देश दिए हैं। यह आश्रम-व्यवस्था किस कारण से थी? समय के मूल्य को सही परिप्रेक्ष्य में समझना ही इसका मूल उद्देश्य था। इसलिए मनुष्यमात्र के लिए यह परम उचित है कि समय का मूल्य पहचाने और प्रत्येक कार्य को यथा समय करें। इस जीवन का क्या भरोसा है। इसे क्षण भंगुर कहा गया है। आज है, कल नहीं भी हो सकता है। इसलिए जो समय हाथ में है, उसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए-

काल करै सो आज कर आज करै सो अब।
पल में परलै होयगी बहुरि करैगो कब।।

साहित्य ही समाज का

दर्पण है...

कल होली का दिन था। पूरे दिन खाने का दर्शन तक नहीं हुआ, काम करने में दिन भर लगा रहा, बिना खाये पिये...शाम को जब भूख अपनी चरम सीमा पर पहुँची, तब होश आया कि पेट अभी तक खाली है। बर्तन अभी धुले नहीं थे और कोई सब्जी भी घर में मौजूद नहीं थी। थकावट ऐसी की बस...बिस्तर पर लुढ़क जाने की इच्छा करती। अंतत: मैनें भोजन किये बगैर ही सोने का विचार बना लिया, लेकिन पड़ोस से आ रही गुझिया और पकवानों की सुगंध ने रही सही भूख को दोगुना बढ़ा दिया। जिसे मिटाने के लिए मैंने अपने कमरे में छानबीन शुरु कर दी कि कुछ तो मिले!!!

इस खोज के दौरान 3 दिन पहले की कुछ सूखी रोटियाँ मिली। जिसे आदतानुसार बाहर फेंकने के लिए दरवाजा खोला, लेकिन.. .....

सोचा, क्यों न आज इन्हीं का भोग लगाया जाय.....सूंघकर और परख कर पता लगा लिया कि अभी सूक्ष्म जन्तुओं की पहुँच इन सूखी रोटियों तक नहीं है।

रोटी का पहला टुकड़ा चबाने की कोशिश करता, अचानक मैं भावुक होकर सोचने लगा.....

जब मम्मी को पता चलेगा, तो वे क्या सोचेंगी?

आज मैं गरीबों को तरह–तरह के पकवान खिला रही हूँ और मेरा दुलारा बेटा सूखी रोटी खा कर भूख मिटा रहा है।

यही सोचकर आँखें बरबस ही नम हो चलीं,

और बची हुई सूखी रोटियों को मैंने गौर से देखा। वे मुस्कुरा रही थीं.....झिलमिलाती हुई..... मुझे अतीत में धकेल रही थी।

उस दिन भी होली थी, मेरे लिये गाँव की पहली होली.....गाँव का विशालतम खुला वातावरण मेरे बालमन को रिझाता और बागीचे में आम के पेड़ों पर लगे बौर के गुच्छे, कल्पना में रसीले मीठे आम नजर आते, जिन्हें देख एक अलग तरह की खुशी मिल रही थी।

दिन भर लाल–हरे रंग में रंगे हुए मैनें गाँव के कई चक्कर लगाये थे और अब नहा धो कर, जेब में ढेर सारी गुझिया और पापड़ भरकर बागीचे में बैठा, कोयल की कूक दोहरा रहा था। कोयल की कूक शुरुआत में काफी धीरे होती लेकिन मेरे दोहराने से उसकी तीव्रता में लगातार वृद्धि होती जाती। जिससे मुझे लगता कि वह मुझे सुन रही है और मैं यह सोचकर आनन्दित होता।

बागीचे के उस छोर पर खड़ा एक छोटा लड़का, रंग से सना हुआ, मुझे गुझिया खाते हुए टुकुर–टुकुर देख रहा था। उसके हाथ में वही सूखी रोटियाँ थीं जिसे चबाने की वह असफल कोशिश कर रहा था। उसे इस तरह देख मेरा मन द्रवित हो गया और मैं उसे अपनी गुझिया देने के लिये उसकी तरफ बढ़ा।

मुझे अपनी तरफ आता देख वह डर कर दूर भाग गया, मैं आश्चर्य से भर गया कि आखिर उसे मुझसे किस बात का भय!!!???

मैंने उसे आवाज दी – ऐ ! सुनो..... ! !

इसके प्रतिउत्तर में वह बिना कुछ बोले, सहमा सा, मेरे करीब आया और काँपते हुए बोला–मैं बागीचे में नहीं गया, मैं तो बस किनारे खड़ा था।

यह सुनकर मुझे हँसी आ गयी और उसका हाथ पकड़कर उसे बागीचे की तरफ खींचता हुआ मैंने बोला–आओ उस पेड़ के नीचे बात करते हैं। वह सकुचाया हुआ, लेकिन डरा सा, साथ बागीचे के उस पेड़ के नीचे आया।

उसे अचानक गुझिया देना मुझे बुरा लग रहा था, मुझे लग रहा था कि मेरे ऐसे देने से वह खुद को लाचार और बेचारा सा महसूस करेगा। शायद गुझिया लेने से इन्कार ही कर दे.....मुझे भी अपने साथ ऐसा व्यवहार अच्छा नहीं लगेगा। तो क्या करूँ????

उस समय मुझे एक युक्ति सूझी थी।

उसकी सूखी रोटियों को देखकर मैंने एक विशेष भाव में उससे पूछा– क्या खा रहे हो?

वह दबी आवाज में कहा – रोटी.

''ऐसे ही .....सूखी! ! !..... आज तो गुझिया खाने का दिन है!'' मैंने चहकते हुए उससे कहा और पूछा–''तुम्हारे यहाँ गुझिया नहीं बनी क्या???''

उसने धीरे से ना में सिर हिला दिया।

एक बार फिर मैं आश्चर्यचकित हो गया, अपने भावों को नियंत्रित करता मैं उससे बोला–"मेरे यहाँ भी आज रोटी नहीं बनी, क्या तुम अपनी रोटी मुझे दोगे?मैं तुम्हें अपनी गुझिया देता हूँ!!"

यह सुनकर उसने अपनी रोटी की तरफ देखा और उसे छुपाते हुए कहा–जूठी है.

तो क्या हुआ, मेरी गुझिया भी तो जूठी है, जूठे हाथ से जो दे रहा हूँ–मैनें मुस्कुराते हुए कहा।

और उसकी रोटियाँ छीन ली। अपनी जेब के हर कोने से गुझिया निकाल कर उसे दिया साथ में पापड़ के टुकड़े भी.....

वह खुश होकर खा रहा था, उसे ऐसे खाते देख एक अद्भुत एहसास मन में पिघला था। उसे बुरा न लगे इसलिए उसकी दी हुई सूखी रोटी को मैं खाने लगा. पहला टुकड़ा खाते ही उसकी कठोरता का आभास हो गया था, मसूड़ों से खून निकल आया था।

अभी यह भोज समाप्त भी न हो पाया था कि मेरे चाचा उधर से होकर निकले और मुझे ऐसे देख चीखते हुए मेरे पास दौड़कर आये और उस लड़के को पकड़ कर मारते हुए बोले– "गधे की औलाद!!" कितनी बार कहा कि बागीचे में मत घुसा करो, लेकिन दरिद्रपन नहीं छोड़ा जाता???"

उसे जी भर कर मार लेने के पश्चात ज्यों ही उनकी पकड़ ढ़ीली हुई, हाथ छुड़ाकर रोता चिल्लाता अपने घर की ओर भागा.

सभी गुझिया बागीचे की धूल में बिखर गयी थी, और मन में पिघल रहा वह एहसास अचानक जम गया।

चाचा ने घूरते हुए मुझे देखा और पूछा–तू क्या कर रहा था रे!!!

हाथ में पकड़ी रोटियों को छिपाता हुआ मैं हकलाते हुए बोला–कु...कुछ नहीं।

कुछ नहीं!!! – मेरे हाथ की रोटी छीन कर बोले–ये रोटी कहाँ पाया???बता??

रोटी को उलट पुलट कर देखने के बाद, उसे एक तरफ फेककर, एक झापड़ रसीद करते हुए बोले– "घर पर खाना नहीं मिलता!!??

अछूतों की रोटी खायेगा???"

हाथ पकड़कर घसीटते हुए बोले–चल.....घर चल तेरे माँ–बाप को बताता हूँ, वे शहर में तुझे इसीलिए पढ़ाते हैं???बोल???

मैं चुपचाप सीमित गुस्से के साथ उनके साथ घर चला आया। घर में घुसते ही वे शोर मचाना शुरु किये.

"देखिये!! ये शहर से यही सीख कर आया है, घूम घूम कर अछूतों की सूखी रोटी खाना सीखा है-

माता श्री के पास ले जाकर मुझे झटकते हुए बोले–लीजिये, अपने लाट साहब को, घर का खाना इसे नहीं मिलता क्या?

शहर में पढ़ रहा है.....हुंह.....!!

माता श्री ने हाथ पकड़कर मुझे अपने पास बैठाया और रूआंसी आवाज में बोली–यहाँ इज्जत लुटाने आया है, देख (थाली में रखे व्यंजनों कि दिखाते हुए) ये सब मैं बाहर खड़े गरीबों को दे रही हूँ, और तू बाहर जाकर सूखी रोटी खा रहा है..... !!??? मुझे कैसा लगेगा?बता?

मैं गुमसुम सा वही बैठा रहा, चुपचाप....!!

बच्चों में विशेष गुण होता है, ज्यादा समय तक दुखी नही रहते। थोड़े समय के बाद मैं भी सब कुछ भूलकर मस्ती करने लगा। बाहर से खाली थाल लाती हुई माँ से मैनें पूछा–ये सब खाना तो अपना है, आप दूसरों को क्यों दे रही हैं???

वे बोलीं–"आज त्यौहार है, दान करने से पुण्य मिलता है"

मैं चहकते हुए बोला–अच्छा यही पुण्य है- सहसा मुझे वह एहसास याद हो आया जो मेरे भीतर पिघल रहा था-

किताबों में कई बार इस शब्द को पढ़ा था, उच्चारण में न आने से यह काफी खराब शब्द लगता था। लेकिन इसका अर्थ समझ में आते ही मैं पुन: बागीचे की तरफ दौड़ पड़ा।... और उस पेड़ से बाते करते हुए बोला–आज हम दोनों ने पुण्य किया न !!! बोलो?तुमने देखा है.

पेड़ खामोश था लेकिन मुझे महसूस हुआ कि उसने हाँमी भरी है और मैं उसी आम के पेड़ के नीचे बैठ गया।

बोझिल सी शाम दूर कहीं ढ़लने लगी थी और आसमान पर सिंदूरी रंग बिखर चुका था..... हल्की हवा के साथ कोयल फिर से कूकने लगी थी और मैं उसकी कूक दोहराने लगा था।

मनीष, छात्र

राष्ट्रीय हिन्दी कार्यशाला – 22 सितम्बर, 2012

हिन्दी दिवस समारोह – 2012

हिंदी दिवस पर माँ सरस्वती को पुष्पांजलि अर्पित करते हुए प्रोफेसर मणीन्द्र अग्रवाल

हिन्दी दिवस पर प्रो० सर्वेश चन्द्रा संस्थान कर्मचारी को पुरुस्कृत करते हुए

श्री मनोजकुमार दिवाकर उपकुलसचिव, विजेताओं को पुरस्कृत करते हुए

डॉ. ओमप्रकाश मिश्र मुख्यचिकित्साधिकारी विजेताओं को पुरस्कृत करते हुए

पतझड़ क्यों ?

शरद का आगमन यहाँ,
पत्तों का झड़ना यहाँ,
मेरा मन मस्तिष्क कहाँ?
यादों का बसेरा जहाँ ।
इस ऋतु चक्र से प्रभावित,
मन हुआ जाता विचलित,
झड़ते हैं पत्ते क्यों?
कालचक्र का पाश है या कि,
जीवन की आवश्यकता ।
इस विचार को लेकर मेरे,
मन मे आज संग्राम है ।
उत्तर की चाह में,
दिशा की खोज में ,
भटका मैं चारों ओर
मिला तब मैं स्वयं से ।
नील नभ की छाया तले,
विविधता यूं ही है बड़े,
जिसे हम रात्रि कहें,
है भोर का संकेत लिए ।
जन्म है तो मृत्यु है,
यही एक वास्तविकता है ।
नवप्रभात के उदय में,
झड़ते पत्तों का ही हाथ है ।
कर्तव्य करके झड़ गए,
राहें नई दिखा गए,
जीवन की धड़कन में,
रक्त अपना वे दे गए ।
इस सत्य का ज्ञान हुआ ,
पूर्वज पत्तों का ध्यान हुआ,
मेरे इस नश्वर जीवन का,
मुझको अर्थ फिर साफ हुआ ।

प्रोफेसर समीर खांडेकर, यांत्रिक अभियांत्रिकी विभाग

ईमानदारी और व्यवहारिकता

आज काम शीघ्र समाप्त करके मैं जल्दी घर जा रही थी, यह तो अच्छा हुआ कि ज्यादा इंतजार किये बिना बस मिल गई और मैं जल्दी से उसमें एक सीट पर बैठ गई। मेरे पास थोड़े पौधे थे जिन्हें मुझे घर जाकर रोपना भी था। सामने वाली सीट पर एक संभ्रात से वकील साहब जो कि अपनी कचहरी की वेषभूषा में थे, अपनी पुत्री के साथ बैठ गये। कुछ स्कूली लड़कियाँ भी घर जाने को तत्पर थी परन्तु बस भरी होने के कारण उन्होने खड़े होकर आपस में बात करते हुए यह यात्रा करने का मन बनाया और वे सभी मेरी सीट के आस–पास ही खड़ी हो गयीं।

पहला बस स्टॉप आने से पहले परिचालक टिकट देने के लिये आ गया और सभी अपना–अपना टिकट लेने लगे। अपने स्टॉप के लिये निर्धारित रुपये देकर मैंने भी टिकट ले लिया। परिचालक ने वकील साहब से भी गंतव्य स्थल का टिकट लेने के लिये कहा जिसका किराया बारह रुपये था, उनके दस का नोट निकालते ही, उनकी पुत्री ने कहा कि उसके पास दो रुपये छुट्टे हैं जिसे दे सकते हैं। उसे इशारे से चुप कराते हुये, वकील महाशय ने परिचालक को दूसरा नोट सौ का दिखाते हुए कहा कि उनके पास दूसरा विकल्प मात्र यही है जिसे वह उसे दे सकते हैं। परिचालक ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए अपने सुविधा शुल्क की व्यवस्था करते हुए दस का नोट ले छ रुपये का टिकट देकर अपना और विद्वान वकील महोदय का कत्याण किया। वकील महोदय अपनी व्यवहारिकता और दो रुपए की बचत पर मन ही मन प्रफुल्लित हुये।

उधर उन स्कूली लड़कियों से भी परिचालक महोदय ने गंतव्य स्थल पूछ कर किराया बताया उन सभी स्कूली बच्चियों ने पूरा किराया दिया, पैसे लेकर परिचायक ज्यों ही आगे बढ़ा लड़कियों ने कहा – अंकल हम सभी ने किराया दे दिया है, अब आप टिकट दे दें क्योंकि ईमानदारी से ही हम सभी आगे बढ़ सकते हैं। यह सुनकर परिचालक और वकील महोदय का मुख कांतिविहीन हो गया। आखिर खड़े रहकर भी (कठिन समय में भी) छोटी लड़कियों ने ईमानदारी का अच्छा उदाहरण जो दिया था वह उन दोनों की व्यवहारिकता पर भारी था। जिन सामाजिक घटकों के लिए यह सबसे आवश्यक पाठ था वह ही इसे भूल चुके थे। इस ईमानदारी और व्यवहारिकता का सजीव उदाहरण देख मैं भी प्रफुल्लित मन से नई पीढ़ी की सोच देख अपने घर चली।

धरा शुक्ला, शोध छात्रा

वैज्ञानिक

भ्रष्टाचारी ने वैज्ञानिक से कहा,
आप किस युग में रह रहे हैं,
इस जन्म में क्या कर रहे हैं?
ना ऊपर की कमाई।
बस ! अन्दर की प्रबल इच्छा,
ईमानदारी–ईमानदारी, काम ही काम,
यह भी कैसा जनून है?
अपनी जेब भरो,
कोई काला धन्धा करो,
दान दक्षिणा लेकर,
ऊपर की कमाई का जुगाड़ करो,
लोग मुझे तुम्हारा दोस्त कहें,
यह मुझे गंवारा नहीं,
तुम्हारी बदहाल जिंदगी,
सभी की जुबां पर है।
सच कहता हूँ मित्र, तुम्हें अपना मित्र कहने से,
मैं अब बहुत कतराता हूँ।
वैज्ञानिक ने कहा सच कहते हो दोस्त,
सभी मेरे अजीज यही बात दोहराते हैं
कहाँ काम करते हो! भाई?
ना जहाँ ऊपर की कमाई!
बस प्रयोगशाला में सारा दिन,
विद्यार्थियों से करवाओ परीक्षण.....परीक्षण....परीक्षण
क्यों अपना समय व्यर्थ गंवाते हो?
ईमानदारी की लुटिया डुबोते हो।
भ्रष्टाचारियों के दमदार तेवर,
और ठाट–बाठ देखकर, कभी–कभी
मेरा दिल भी हिचकोले खाता है,
बीबी की जली–कटी,
मैं भी रोज सुनकर आता हूँ,
पर प्रयोगशाला में आते ही,
शांत समुद्र सा हो जाता हूँ,
विद्यार्थियों की आँखों की चमक,
मेरी बदहाल जिंदगी की....लाइफ लाइन है,
विद्यार्थियों से प्रयोगशाला में अलौकिक रौनक है।
ईमानदारी की रोटी, भर पेट खाता हूँ।
अपनी छोटी सी जादुई दुनिया में खो जाता हूँ।

डॉ सुकर्मा थरेजा
एत्युमनस, भा. प्रौ. सं. कानपुर

माँ

जिंदगी की तपती धूप में एक ठंड़ा साया पाया है मैंने
जब खुली आँख तो अपनी माँ को मुस्कुराता हुआ पाया है मैंने
जब भी माँ का नाम लिया
उसका बेशुमार प्यार पाया है मैंने
जब कोई दर्द महसूस हुआ, और कोई मुश्किल आई
अपने पहलू में अपनी माँ को पाया है मैंने
जागती रही वो रात–रात भर मेरे लिये
जाने कितनी रातें, उसे जगाया मैंने
जिंदगी के हर मोड़ पर, जब हुई गुमराह मैं
उसकी हिदायत पर, पकड़ ली सीधी राह मैंने
मेरी हर फिक्र को जानने वाली
मेरी जजबातों को पहचानने वाली
ऐसी हस्ती पायी है मैंने
मेरी जिंदगी और खुशी सिर्फ मेरी माँ हैं
इसी के लिए तो, सिर्फ इसी के लिये
इस जिंदगी की शमा जला रखी हैं मैंने

रंजना श्रीवास्तव
परियोजना सहायक

यादें

छोटी-छोटी चीज पर मचल जाना बच्चों का स्वभाव होता है - हर चीज से प्यार, खासकर जानवरो से - कुत्ते का पिल्ला देख तो गोद में उठाकर प्यार करने की चाह, चिड़िया का घोंसला कहीं दिखभर जाय, तो तुरन्त उसमें झाँककर देखने की इच्छा कि घोंसले में अंडे हैं या नहीं - और अगर कहीं अंडे दिख गए, तो जाने कौन सी नियामत मिल गयी - बालमन की उस खुशी को तो बयां ही नहीं किया जा सकता - किसी जानवर को कष्ट में पाया, तो मन व्याकुल हो उठता था। अब आजकल तो नजर नहीं आता, किन्तु तब, जब हम छोटे थे, यह एक आम दृश्य था कि अपने वजन से सौ गुना ज्यादा वजन लादे एक ठेले को, निरीह सा बैल खींचकर ले जा रहा है

आज भी जब वह दृश्य सामने आता है, तो आंखे भर आती हैं, और मन न जाने कैसा हो जाता है - बचपन कि तमाम स्मृतियाँ एक-एक पन्ना पलटती हुई साकार होने लगती हैं।

उस जमाने में हम किराए के मकान में रहते थे - हमारे मकान का कम्पाउन्ड बहुत बड़ा था और चारों तरफ पेड़ ही पेड़ थे। समझ लीजिए कि हमारा मकान एक छोटे से जंगल में था-न जाने वहाँ कितने पेड़ होंगे, बल्कि यूँ कहना चाहिए, कि किसका पेड़ नहीं था। बड़े से बड़े शीशम के पेड़ों सहित हर प्रकार के फल के पेड़ वहाँ थे। एक तरफ फालसे की झाड़ियाँ और अंगूर की बेलें, तो दूसरी ओर शहतूत के वो विशालकाय पेड़ जिन पर कीड़े हमेशा रेंगते ही रहते थे। पास जाने से भी डर लगता था, कि कहीं ऊपर चढ़ न जायें। अनगिनत लीची और आम के पेड़, जिनकी बौर की सुगंध आज भी मेरे ज़हन में है। गर्मी के मौसम में पेड़ फलों से इतना लद जाते कि डालें झुककर जमीन झूने लगती थीं जामुन के पेड़ों पर वो अनगिनत मधुमक्खियाँ जिनकी भुनभुनाहट से कभी-कभी इतना शोर होता कि पिता जी सो नहीं पाते थे। हमने हर मौसम के फल खाये गर्मियो में आम और लीची से मन भर जाता तो जाड़े में अमरूद से। स्कूल जाते समय अमरूद खाते चले जाते। सच कहूँ तो इतना

मीठा अमरूद मैंने आज तक नहीं खाया। उस फल की कुछ बात ही अलग थी या कहिये कि बचपन की हर याद बहुत मीठी होती है।

स्कूल से आकर, हम सब बच्चे कम्पाउन्ड में आइस -पाइस खेलते और वह भी क्या अनोखी आईस-पाईस, कि छिपना तो पेड़ पर ही था। कभी-कभी लगता है, कि कैसे इतनी आसानी से उन पेड़ों पर चढ़ जाते थे, जिनको देखकर अब डर लगता है। और आईस-पाईस ही क्यों, पढ़ाई भी पेड़ पर चढ़कर ही करते थे। हमारी माँ अक्सर गुस्से में कहती-

"किसी दिन हाथ-पैर टूटेंगे तब समझ में आएगा। तब पेड़ पर चढ़ना भूल जाओगी।"

लेकिन डांट की किसको परवाह थी। एक कान से सुनकर, दूसरे कान से निकाल देते और मौका पाते ही दोबारा चढ़ जाते। वो दिन भी क्या दिन थे न आज की चिंता, न कल की परवाह। बस खेल कूद और मस्ती। न डांट बुरी लगती, न किसी चीज से भय। बस दिमाग में मस्ती के सिवाय कुछ सूझता ही नहीं था।

ऐसे ही उन बीते दिनों का एक वाकया, आज अचानक मुझे याद आ गया। पता नहीं दिमाग के किस कोने में जाकर छिपा बैठा था।

हमारे घर में, जहाँ अब मैं रहती हूँ, अशोक के काफी पेड़ है। रोज की तरह आज सवेरे, जब मैं चाय का प्याला लेकर अपने लॉन में बाहर आयी, तो एकाएक बहुत से तोतो के कलरव ने मेरा ध्यान उस ओर आकर्षित किया। मैंने देखा कि पेड़ पर सैकड़ों की तादाद में तोते पंख फड़फड़ा कर जोरों से शोर मचा रहे हैं। मैंने देखने की बहुत कोशिश की कि वहाँ क्या हो रहा है? किन्तु अशोक के पेड़ पर पत्ते इतने घने होते है कि कुछ भी नहीं दिखायी देता। खैर, वहाँ न जाने वे सब अंदर क्या कर रहे थे - लड़ रहे थे, या खुश थे, ये पता नहीं किन्तु उनको देखकर, एकाएक मुझे अपने बचपन का वाकया स्मरण हो आया। बहुत छुटपन की बात है, जब हम सब बेहद भोले और नादान थे। बचपन की छोटी से छोटी बात एक गहन छाप छोड़ जाती है।

आम की डालियों में से झाँकती कोयल की कुहू-कुहू के बाद, वर्षा ऋतु के आगमन से मौसम ठंडा हो गया था। चिड़ियों ने अपने-अपने घोंसलो में अंडे दिये थे, जो अब उनके चूजों की चहचहाट से गूंज रहे थे। मेरी छोटी बहन जो उस समय कुछ पाँच-छः वर्ष की थी, और मैं रोज अपने कमरे से देखती, कि चिड़ियाँ अपने बच्चों के लिए दाना लेने जाती है, और शाम को उनको अपने मुँह से निकाल कर खिलाती है। बहुत मजा आता था यह सब देखने में। हमारे आंगन के आम के पेड़ पर तोतो ने अंडे दिए थे, जिसमें चूजे अब छः सात दिन के हो गये थे। बेचारे अभी हिलडुल नहीं पाते थे।

उनकी आँखे भी पूरी तरह से खुली नहीं थी। बस वे चूँ-चूँ करते रहते थे। हम दोनों बहने रोज जाकर उन्हें एक बार देख आते। मन तो बहुत करता कि प्यारे-प्यारे चूजों को छू कर देखें लेकिन हमारी माँ ने सख्त हिदायत दी थी कि अगर भूले से भी बच्चों को हाथ लगाया तो चिड़िया घोंसले में दोबारा नहीं आयेगी। यह जानने के बाद भला कौन उन्हें छूता, पर ध्यान उसी में रहता था। एक दिन तोती जब छोटा सा दाना लेने गयी तो जाने कहाँ से एक कौए ने आकार एक चूजे को घोंसले से गिरा दिया और अपनी चोंच से उसे मारने लगा। वो छोटा सा असहाय बच्चा जमीन पर पड़ा था। कुछ भी करने में असमर्थ। बेचारे के मुँह से डर के मारे बोल नहीं निकल रहा था। अपने कमरे की खिड़की से जब हम दोनों बहनों ने यह देखा तो दौड़ कर कौए को भगाया। किन्तु इतनी देर में तो वह तोते का बच्चा, बेहद घायल हो चुका था। हम दोनों ने उसे उठाया और जल्दी से घर के अंदर ले आये। घर तो ले आये लेकिन उसे रखने की कोई जगह तो थी नहीं। न पिंजरा न कोई बड़ा डब्बा। तभी बहन कुछ सोचकर,

कमरे में दौड़ कर गयी और वहाँ से उसके लिए एक मोढ़ा लेकर आई। मोढ़े को उल्टा किया गया और फिर माँ से एक साड़ी मांगकर, हम दोनों ने, उस सुग्गे के लिए, मोढ़े में एक गुदगुदा बिस्तर बनाया। उस बच्चे को उसमें बहुत ध्यान से रखा गया । किन्तु बेचारा इतना कमजोर था कि ठीक से अपना बोझ भी नहीं संभाल पा रहा था रखते ही लुढ़क गया । यह बेहद चिंताजनक स्थिति थी । इतने छोटे से पक्षी के बच्चे को दवा भी दें तो क्या दें, और कितनी दें । अब हमारा बालपन उसकी इस हालत से व्यथित हो रहा था और समस्या केवल यही नहीं थी । इस सब से बढ़कर एक चिंता हम दोनों को सता रही थी । वह थी हमारा कुत्ता–विस्की । विस्की साहब की जलन तो अपनी सीमा पार कर चुकी थी कि ऐसा कौन आ गया है जिस कारण उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा और सब उस नए मेहमान कि सेवा में लगे हैं । जब तक हम दोनों बहनें तोतों के बच्चे की सेवा कर रहे थे, विस्की को ज्यादा परेशानी नहीं हुई किन्तु जैसे ही हमारी माँ ने उस सुग्गे को गोद में लिया तो वो बर्दाश्त न कर सका और भौंक–भौंक कर उसने घर ही सर पर उठा लिया । जब बहुत कहने पर भी वो शान्त नहीं हुआ तो माँ ने तोते को छोड़ा और उसे दूध देने चली गयी ।

इसी कोलाहल के बीच, मेरी छोटी बहन ने, जो उस समय कुछ छः–सात वर्ष की थी, जानवरों के डॉक्टर को फोन करके उनसे सलाह लेनी चाही कि हमे क्या करना चाहिए? असल में हमारे कुत्ते के सिलसिले में उन्हें अक्सर फोन किया जाता था, तो बहन को लगा कि वो जरूर तोते के बारे में भी बता देंगे । अब वो बेचारे क्या बताते ऐसा केस तो उनके पास पहली बार आया था ।

तोते के बच्चे को कौए ने बहुत घायल कर दिया था । उसके शरीर पर चोंच के बहुत निशान थे । किसी तरह से विस्की को शान्त करके, माँ ने हमें हल्दी का लेप बनाकर दिया और हम दोनों ने धीरे–धीरे उस बच्चे के बदन पर वह लेप लगाया । फिर उस सुग्गे को मोढ़ा में रखकर विस्की साहब से बचाकर, अपने कमरे में रख लिया । उस लेप से चूजे को कुछ आराम मिला तो वह आंखे मूँदकर अपने मोढ़े के घर में सो गया । अब हम दोनों का मन कहीं नहीं लग रहा था। बस पूरे दिन उस तोते के बच्चे के बारे में ही सोचते रहे कि वह ठीक भी होगा या नहीं, कहीं उसकी तबीयत और न खराब हो जाये ।

रात मे नींद ही नहीं आयी थी । कितनी बार तो मेरी बहन उठ–उठ कर देखती कि वो सांस ले रहा है या नहीं । दूसरे दिन स्कूल में भी यही चर्चा रही कि उस सुग्गे को क्या खिलाना है । दोबारा लेप लगाना है या नहीं ? बेचारा शायद प्यासा हो । हमारे साथ सब दोस्त भी चिंता में डूब गए । सबने तरह–तरह के परामर्श भी दिए । घर आकर देखने का वादा भी किया । हमने भी भगवान से प्रार्थना की कि वह जल्दी से स्वस्थ हो जाये । घर आने पर पता चला कि वह ठीक है तो हम दोनों बहुत खुश हुए और तुरंत बागीचे से फल लाकर भगवान को चढ़ाए । बच्चे अक्सर वही करते है जो अपने बड़ों को करते देखते है । अब समस्या उसको कुछ खिलाने कि थी, समझ में नहीं आया कि क्या दें । कहीं भूख से ही न मर जाये । तब माँ से पूछकर आटा गीला करके उसकी चोंच में डाला गया पानी के सहारे वो उसके पेट में गया ।

सब भूलकर उसकी सेवा करने में मजा आने लगा । हमारे लिए तो जैसे एक नया खिलौना आ गया था । पता नहीं दिन कैसे बीत जाता और दूसरे दिन स्कूल जाने का मन बिलकुल न करता था ।

कुछ दिनो में वह सुग्गा मोढ़े के बाहर फुदक कर निकलने लगा और एक दिन जब हम सो कर सवेरे उठे तो देखते है कि तोता मियाँ डाइनिंग–टेबल पर बैठे फूलों पर चोंच मार रहे है।

उसे देखकर तुरन्त यह समझ में आया कि इसके लिए पिंजरा चाहिए। फौरन गुल्लक तोड़कर उससे पिंजरा आया और तोता मियाँ उसमें स्थापित कर दिए गए । उसे मिर्चा, मटर, दाल–चावल, रोज खिलाया जाता और घंटो उससे बात होती । पता नहीं वह सुग्गा कितनी बातें समझता था, किन्तु हमें मजा बहुत आता । धीरे–धीरे समय के साथ वो बड़ा होने लगा ।

उसकी पीली चोंच ने जो कि हम लोगों ने पहले कभी किसी तोते में नहीं देखी थी उसे और भी अद्भुत बना दिया था । उसके हरे पंख बसंत की नई पत्तियों के समान मुलायम तो थे ही उन पर लाल नीले रंग ऐसे छिटके थे जैसे माला से टूट कर मोती बिखर जाते हैं । एक और आश्चर्य जनक बात यह थी, कि अन्य तोतों से भिन्न उसकी गले कि कंठी नीले, लाल और बैंगनी रंग की थी, जिससे वो बहुत सुन्दर दिखता था। जो आता बस उसे निहारता ही रहता ।

उसने बोलना सीखा और फिर जो उसने बोलना शुरू किया तो जो हम बोलते वो वही दोहराता । खास तौर पर जब हमारी माँ हमें डाँटती, तो वो उस बात को दिन भर दोहराता । यहाँ तक की कभी–कभी तो गुस्से के मारे उसे मारने का मन भी करता था । मैंने यह देखा है कि चाहें जानवर हो या पक्षी अपने मालिक को अच्छे से पहचानते हैं और उसे प्यार करने के साथ–साथ खुश रखने की भी कोशिश करते है। तोता भी हमारे पिता जी से ज्यादा नहीं बोलता था जितना हमारी माँ से क्योंकि खाना तो वही देती थीं । एक और बात बेहद अचरज की थी, कि धीरे–धीरे वो तोता, जिसको हम सब प्यार से मिठ्ठू मियाँ कहते थे, विस्की साहब का भी दोस्त बन गया था । दोनों एक दूसरे से बातें भी करते और अगर विस्की को खाना देने में देर हो जाती तो तुरन्त तोता, "खाना दो, खाना दो" कहकर हमें याद दिलाता और अगर भूले से भी सब्जी या फल लाने पर मिट्ठू मियाँ को न दिया जाता तो विस्की साहब माँ कि साड़ी खींचकर उन्हें याद दिलाते कि कुछ भूल रही हो । वो तोता हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया था । मिट्ठू मियाँ हमारे साथ बहुत वर्षो तक रहे । किन्तु आश्चर्य कि बात यह है कि जब विस्की चला गया तो वह भी ज्यादा दिन तक नहीं जी सका । न जाने कैसा रिश्ता था उन दोनों के बीच? उनके जाने का दुःख हम सब को भी बहुत था ।

उसके बाद तोते तो बहुत पाले गए, चिड़ियाँ भी रखी गयीं, लेकिन मिट्ठू मियाँ के बराबर कोई नहीं था।

उसकी यादें, इतने वर्षों बाद, आज भी मेरे ज़हन में ताजा है। पूरा वाकया एक रील के समान मेरी आँखों के सामने से गुजर गया और चाय पीते हुए, मैं अशोक के पेड़ पर बैठे तोतों को धन्यवाद दे रही हूँ, कि कितना मीठा स्मरण उन्होंने अनजाने में ही मुझे करवा दिया।

वत्सला मिश्रा

स्वामी रामतीर्थ का अनुभव

स्वामी रामतीर्थ जब प्रोफेसर थे तब उन्होंने एक प्रयोग किया और बाद में निष्कर्षरूप में बताया कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में या परीक्षा से कुछ दिन पूर्व विषयों में फंस जाते हैं, वे परीक्षा में प्राय असफल हो जाते हैं, चाहे वर्ष भर उन्होंने अपनी कक्षा में अच्छे अंक क्यों न पाये हों। जिन विद्यार्थियों का चित्त परीक्षा के दिनों में एकाग्र और शुद्ध रहा करता है, वे सफल होते हैं।

ऐसे ही ब्रिटेन के विश्वविख्यात केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के कॉलेजों में किये गये सर्वेक्षण के निष्कर्ष असंयमी विद्यार्थियों को सावधानी का इशारा देने वाले हैं। इनके अनुसार जिन कॉलेजों के विद्यार्थी अत्यधिक कुदृष्टि के शिकार होकर असंयमी जीवन जीते थे उनके परीक्षा –परिणाम खराब पाये गये तथा जिन कॉलेजों में विद्यार्थी तुलनात्मक दृष्टि से संयमी थे उनके परीक्षा–परिणाम बेहतर स्तर के पाये गये।

काम विकार को रोकना वस्तुतः बड़ा कठिन है किन्तु असंभव भी नहीं हैं, हमारी तो वो धरती माता है जिसने ऐसे–ऐसे पुत्रों को जन्म दिया है कि जिन्होंने अपने पिता की खुशी के लिए आजीवन बह्मचर्य का व्रत ले लिया।

कविता

मन

जब भी कभी अकेला होता है,
न जाने क्या–क्या सोचता है; ये मन।
कभी माँ के दुलार को,
तो कभी बाबा की फटकार को,
या बहन की पुकार को तरसता है; ये मन।
अपनों के साथ बिताए पल को याद कर,
मंद मंद मुस्कराना चाहता है; ये मन।
और अपनों के संग खुशी के पलों के बाद,
की तनहाई से डरता है; ये मन।

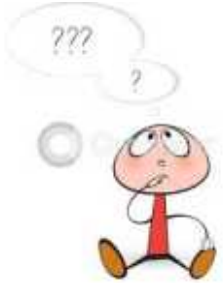

फिर जब तनहाई में होता है,
तो माँ के प्यार को तड़पता है; ये मन।
और उन की याद में जब खो जाऊँ,
तो तड़प–तड़प के रोता है; ये मन।
परिवर्तन तो संसार का नियम है पर,
ना जाने क्यों उसके विरोध में लड़ता है; ये मन।
पर परिवर्तन के दौर में, नई राह की होड़ में,
अपनों से दूर होने को मजबूर करता ये मन।
नहीं पता इन बदलते हालात में, कैसे कैसे बदल के रंग,
इंसान को जीना सिखाता है; ये मन।
अपनों को याद कर तड़पता, मुस्कराता
जाने क्या क्या सोचने को विवश करता है; ये मन।

मनमोहन सखूजा
कनिष्ठ सहायक
विधि प्रकोष्ठ

गाँव की याद

आँखें जिसकी टिकी रहती थीं द्वार पे
बाँहें फैलाये कोई बुलाता था प्यार से
वो कैलाश के समोसे, वो मोधू की मिठाई
वो रबड़ी दूधवाली और मीठी रसमलाई
खाते थे हम और दादा मिलकर बड़े चाव से
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी हैं अभी तक गाँव में.....
मुझे देख जिन्हें नवचेतना थी आती
कहते थे आयी "बिट्टू" करामाती
वो दुपहर में उन्हें सोते से जगाना
उनके चिढ़ने पर हमारा नाच के दिखाना
आज भी वो थिरकन हो मेरे पांव में
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी हैं अभी तक गाँव में.....
जाकर देखा जहाँ कभी बीता था बचपन
बाट जोहते मिले मेरी बेटी औ मेरा भुवन
वो चुप्पी साधे घर के दरवाजे
वो गुम हो गयी थी दादा की प्यारी बातें
हृदय द्रवित था मेरे जीवन की नाव में
गाँव में.....

अर्चना शुक्ला, छात्रा

गीत संगीत की भिगोती फुहार
ढोलक की थाप, मंजीरे की झंकार
वो सोहर, सरिया, वो गारी देवारी
वो फगुआ सावन बसन्त बहार
घुला है अपनत्व इनकी हवाओं में
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी है अभी तक गाँव में.....
अनजाने रिश्ते बनते ही जाते
प्रीत के धागे ये जुड़ते ही जाते
कोई नानी तो मामी
कोई मौसी तो भौजी
बीता है बचपन इनकी ममता की छाँव में
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी हैं अभी तक गाँव में.....
श्रंगारिक फसलों से सजी हुयी धरती
धानी हरी चूनर संजोये हुये धरती
वो सरसों, वो सेमल, वो सूरजमुखी
अरहर भी पक कर है फूली खड़ी
भौरों की गुंजन है इनकी घटाओं में
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी हैं अभी तक गाँव में.....
बागों में कुहुकती कोयल की आवाज
पपीहे भी पीहू का देते हैं राग
वो अमुवा की डाल, काले जामुन का जाल
वो चिड़ियों की चहक वो मयूर का नाच
होता है अतिथि संदेश कउवे की कांव–कांव में
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी हैं अभी तक गाँव में.....
ठाकुर द्वारे में सजी राध–श्याम की मूर्ति
नवयौवनायें जहाँ करती हैं आरती
वो घंटों के नाद, पंजीरी का स्वाद
नन्हे मुन्हों का एक स्वर में जय हो का अनुनाद
बसी है आस्था भी मेरे भाव में
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी हैं अभी तक गाँव में.....
जरा सी बातों में लड़ना–झगड़ना
फिर मिट्टी पर गिरना, गिरकर संभलना
वो रूठना–मनाना, वो तुतलाती बोली
वो चीखना–चिल्लाना, वो हंसी वो ठिठोली
जहाँ मरहम लगाता प्यार हर किसी के घाव में
क्योंकि कुछ पेड़ बाकी हैं अभी तक गाँव में.....

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

श्रीकृष्ण कहते हैं – सात्विक प्रवृत्त्यों को दिलाने वाले विवेक, वैराग्य इत्यादि को निर्विघ्न प्रवाहित करने के लिए तथा दूषण प्रवृत्तियों के कारक काम–क्रोध, राग–द्वेष इत्यादि का पूर्ण विनाश करने के लिए, परम धर्म परमात्मा में स्थिर चित्त रखने के लिए मैं युग–युग में अर्थात् हर परिस्थिति, हर श्रेणी में प्रकट होता हूँ।

(श्रीमद भगवद गीता 4:8)

एक आधी बची सिगरेट

रात के तन्हा सफर में
जब थक जाता हूँ मैं
नींद से भागते हुए, बचते हुए
यादों के आलिंगन से,
जलाता हूँ एक आधी बची सिगरेट

भागते हुए हर उस चीज से,
जिसमें तनिक भर भी हो शक्ति,
जगाने की मन–कंदराओं में छुपी
उन अर्ध–सुप्त कामनाओं को
जलाता हूँ एक आधी बची सिगरेट

दिन की चेतना से ज्यादा
भयानक है रात का अवचेतन
चेतना की आखिरी डोर पकड़े
भोर के इंतजार में, बेमन
जलाता हूँ एक आधी बची सिगरेट

चिंगारी को पार्थ बनाकर
धुँए के क्षण–भंगुर रथ पर
भागता हूँ मन के कुरुक्षेत्र से
अपनी ही परछाईं से दूर
जलाता हूँ एक आधी बची सिगरेट

मोहित शर्मा, यांत्रिक अभियांत्रिकी

चेतावनी : सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

ऐ सूरज हो कहाँ तुम?

आज सुबह–सुबह जब खिड़की से पर्दा हटाया
थी हल्की लालिमा, पर सूरज नजर नहीं आया
ऐ सूरज हो कहाँ तुम?
हाँ! शाम कुछ परेशान से दिख रहे थे, तुम तो घूमते हो सारा जहाँ
हमें तो चिंतित कर देते हैं ये चौबीस घंटे के न्यूज चैनल यहाँ
क्या सर थामे टंगे हो नदिया पार?
क्या कर रहे हो?कुछ गहन विचार
भ्रष्टाचार, मँहगाई, समस्याएँ हैं अनेक
शायद तुम्हें परेशान कर रहीं हैं कुछेक
कहीं तुमने संसद की खिड़की पर अधिक समय तो नहीं बिताया
और देख वहाँ का बवाल, मन घबराया
वे क्या सुनेंगे एक महिला की बैठ जाईये–बैठ जाईये की महीन पुकार
जो नहीं सुन सकते जनता की गुहार
कहीं तुम्हें काले धन की चिंता ने सताया हो
या सिब्बल का ड्रीम प्लान रास न आया हो
स्वाभिमानी! हो कहीं किसी बाहुबली नेता से तो नहीं भिड़ गए
या सत्ता पक्ष का विरोध कर सीबीआई के चंगुल में फँस गए
ऊपर हो नीचे की चिंता क्यों करते हो?
अरे! तुम भी तो सत्ता के अभिमानी हो
गर्मियों में तपते ही जाते हो
और ठंड में मुँह छिपाते हो
पर सच है प्रकाश भी तो तुम्हीं लाते हो
राम, कृष्ण और गाँधी बन कर मिटाया अँधियारा
आज अन्ना की हर लौ में फैलाओ अपना उजियारा
तभी खिड़की से बड़ा सा सूरज नजर आया
मानो मेरे टेढ़े–मेढ़े विचारों पर खिलखिलया
ऐ सूरज आज की सुबह तो तुमने बहुत छकाया
चाय का प्याला भी आज पतिदेव ने हमें थमाया।।

श्रीमती दीपा चन्द्रा

कली

मुझे इस गाड़ी से, एक नन्ही कली दिख रही है
जो अपना नारी होने का, दुख-दर्द सह रही है
बंजर भाग्य होकर भी, वो खुश दिख रही है
और अपने पसीने से वो, दु:ख की खेती कर रही है।
क्या झुक कर ही रहना है, उसे इस देश में
जहाँ भेड़िये हैं, इंसानों के भेष में
आँखें उसकी शायद, कुछ कह रही हैं
उम्मीदें भी उसकी, हर घड़ी ढ़ह रही हैं
मुझे दिख रहा हैं, उसके सपनों का राजकुमार
क्यूंकि आज भी लगा है, सड़कों पर बचपन का बाजार
जवानी से पहले ही, वो अधेड़ हो जायेगी
खिलने से पहले ही, कली मुरझा जायेगी.
उसकी सिसकियां मैं, अभी से सुन रहा हूँ
इस गाड़ी में बैठ कर मैं, दिल ही दिल में घुट रहा हूँ
कभी देखे थे सपने मैंने भी, मजबूरों की मदद करने की
पर बैठा हूँ आज मैं, स्वार्थ की चादर में छुप के.
वो सामने की बत्ती भी, हरी हो गयी है
गाड़ी मेरी भी, मंजिल की तरफ बढ़ रही है
सामने से आ रही कलिमा ने, इस नन्ही कली को ढक लिया है
अंधों के बीच में रहकर मैंने भी, आँखे बंद करना सीख लिया है।

दीपक आर्या

गज़ल

उम्र सारी गुजरती जाती है मेरी,
हसरतें तो सभी बाकी हैं मेरी
सुबह से रात तक हर रोज बस
एक मुक्तसर सी जिंदगी है मेरी
वो समझते हैं के मैं हूँ उनके लिए
हकीकत में सोच जुदा सी है मेरी
कभी न सोचा गहरायी से उसे
हाय कितनी शदीद गलती है मेरी
अपनी खुशी के लिए कत्ल कर दो उसे
कितनी काफिर खुशी है मेरी
फ़ना होना ही जब हकीकते आखिर है
क्यों बार-बार ठोकरें खाता है हर मुसाफिर
वफा, ख्वाहिश, चाहत, खुशी, सनम
सिर्फ आइने के जैसे तस्वीर हैं
मैं जानता हूँ मंजिल न मिलेगी सोची हुई
मैं नादा हूँ, कम अक्ल हूँ, ये जाहिर है

सी एस गोस्वामी
यांत्रिकी अभियांत्रिकी

मंदिर की घंटियाँ

हर मंदिर में एक घंटी अवश्य होती है,
कहीं छोटी तो कहीं बड़ी होती है।
बहुत से मंदिरों में तो अनेकों की संख्या में होती हैं,
छोटी, बड़ी सभी प्रकार की ।
यह अनोखा सौभाग्य प्राप्त है इन्हें,
जो भी मंदिर जाते हैं।
वे ईश नमन से पूर्व इन घंटियों को अवश्य बजाते हैं।
जिनके हाथ इन तक नहीं पहुँच पाते,
उन्हें गोद में उठाकर घंटी बजवाई जाती है।
एक बार मैंने माँ से पूछा था,
हम घंटी क्यों बजाते हैं?
माँ ने बताया था कि यदि भगवान सो रहें हों तो,
वे हमारी विनती सुनने के लिए उठ जाते हैं।
क्या भगवान इतने आलसी हैं?
एक जगह बैठना ही तो होता है उन्हें,
और फिर सारी रात तो सोते ही होंगे;
फिर भी दिन में सो जाते हैं?
और! एक प्यारी सी चपत जड़ी थी माँ ने हँसते हुए,
चुपचाप आँखें मूँदकर प्रार्थना करो।
ऐसा भी हो सकता है कि भगवान ऊँचा सुनते हों,
और हमारे घंटी बजाने पर वे ध्यान लगाकर सुनते हों।
माँ ने हँसते हुए समझाया था,
नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।
तभी तो आरती के समय, कहीं भगवान सो ना जाएँ,
पुजारी निरंतर घंटी बजाता रहता है।
इतने सारे लोग जो प्रार्थना कर रहे होते हैं एक साथ।

रविकांत सैनी

खुशहाली

हर घर में हो खुशहाली,
न हो कहीं पर कोई भी मातम,
हर हाथ को मिले भरपूर काम,
न बैठे कभी भी कोई बेकार,
हर दिल में हो सबके प्रति प्यार,
न हो कभी किसी से कोई तकरार,
न हो कोई रोटी के लिये मोहताज,
न हो कभी भी धर्म के नाम पर दंगा फसाद,
प्यार के दीये हमेशा जलते रहें
आपस में सब मिलजुलकर रहें।

प्रणव गुप्ता, लेखा अनुभाग

भाषा की परिभाषा

भाषा की परिभाषा ऐसी,
भाषक जैसी बोलें वैसी।
देसी शब्द विदेशी प्यारे,
उपयोगी सारे के सारे।।

मन की बातें व्यक्त करें जब,
भाव सभी स्पष्ट करें तब,
शब्द कहीं भी उपजे हों पर,
काम बनाएँ, सधता मतलब।

ऋण लेकर जब धन उपजाओ,
ऋण वापस दे खूब सुख पाओ,
अर्थशास्त्र का नियम निरंतर,
भाषा में भी नित्य लगाओ।

भाषाएँ चलती रहती हैं,
समय के साथ बदलती भी हैं,
भाषा के पावों में जंजीरें,
जकड़, प्रगति को मत रुकवाओ।

चन्द्र शेखर त्रिवेदी, एत्यूमनस

भगवान

बहुत परेशान, बहुत हैरान,
ढूँढ़ने निकला, भगवान,
मंदिर, मस्जिद, गिरजा,गुरुद्वारा,
सरोवर, नदी, पहाड़, वन,
हर जगह ढूँढ़ा,
कहीं न मिला भगवान,
थक हार कर घर लौटा, देखा
माँ, ममतामई अश्रु लिए,
देहरी पर चिंता-निमग्न,
और पिता,
हृदय-सिन्धु के सुनामी थपेड़ों,
को माथे पर समेटे,
सूने नैनों से, राह निहार रहे हैं,
हाय! मैं मूरख, कहाँ-कहाँ घूमा,
कहाँ-कहाँ ढूंढ़ा, पर
स्नेह-आशीष की गोद में उठाने को,
घर में ही मिले भगवान।।

बृजेन्द्र श्रीवास्तव (उत्कर्ष), स्वास्थ्य केंद्र

मेरी कलम

लिखने का कर रहा है बहुत मन,
अचानक से जाने कैसी लागी ये लगन,
न कुछ सोचा और न ही समझा,
हाथों में बस यूं ही उठा ली ये कलम।।
मन में खूब सारे हैं विचार उमड़ पड़े,
शायद अपने आने की राह है देख रहे वो दूर खड़े,
किस-किस को अंजाम तक ले जाऊँ अपनी इस कलम से
बड़ी अजब सी कशमकश आन खड़ी हुई है अंतरमन में।।
काफी सोच विचार के बाद, कुछ तो है मन को आया याद,
ठान ली इसने अब तो , लिख कर ही छोड़ना हैं कुछ नायाब,
चाहे कोई जंगल हो, या फिर हो कोई फूलों का बाग
कली को गुलाब बना कर अब तो, देना है बस किसी को जवाब।।
मत समझ लेना गलत, मेरे इस जवाब के तरीके को,
ये तो बस एक तरीका है, ऊपर पहुँचने का मेरी इस लगन को,
नहीं था इरादा कोई इस मन का, तेरी तारीफ की तौहीन करने का,
जरिया था ये तो छोटा सा, तुझसे थोड़ी तारीफ पाने का।।
फिर भी अगर जाने अनजाने में, दिल हो दुखाया इसने तेरा,
देख जरा नीचे झुककर मेरे ऐ दोस्त.....
माफी के लिए पहले ही झुका है सिर ये मेरा!!!

परवा गोयल, छात्रा

कल, आज और कल

बच्चों का दल,
चिड़ियों सा कोलाहल,
कल, आज और कल।
निष्कपट, मासूम सी अकल,
बड़े बुजुर्गों की नकल,
कल, आज और कल।
श्वेत, पवित्र और निश्छल,
झरनों सा कलकल,
कल, आज और कल।
गोल मटोल दमकती शकल,
खिलता गुलाबी कमल,
कल, आज और कल।
उन्हें देखता रहा अविरल,
अश्रु भी न पाए निकल,
उस पल, आज और कल।
हृदय द्रवित और विकल,
कटना न था वो पल,
न कटता पल, आजकल।
अनाथालय में बच्चों का दल,
वो बच्चों का वो दल,
कल, आज और कल।

विजय देवरा, छात्र

Designed by Aman Jain

आत्मनिर्भर बनें

एक बहुत अच्छा उदाहरण याद आ रहा है जो हमारी बात को स्पष्ट कर देगा और भी आप भी अनुभव करेंगे–

हाथी शेर की अपेक्षा अधिक बलवान होता है। उसका शरीर बड़ा और भारी होता है फिर भी अकेला शेर दर्जनों हाथियों को मारने–भगाने में समर्थ होता है। शेर की इस ताकत का रहस्य क्या है?

सच तो यह है कि हाथी अपने शरीर पर भरोसा करता है जबकि शेर अपनी शक्ति (प्राणबल) पर भरोसा करता है। हाथी झुण्ड बना कर चलते हैं और जब विश्राम करते हैं तो एक हाथी को पहरेदार के रूप में नियुक्त करते हैं। उन्हें सदा यह डर लगा रहता है कि कहीं शेर उन पर आक्रमण न कर दे।

यदि हाथी को अपने आत्मिक शक्ति पर भरोसा हो जाय तो वह कई शेरों को सूँड से उठाकर पटक सकता है, अपने पैरों से कुचल सकता है, परंतु बेचारे हाथी को स्वयं पर विश्वास नहीं होता, इसीलिए उसमें सदा साहस का अभाव बना रहता है।

आप अपनी आंतरिक शक्ति पर पूर्ण विश्वास करें। यह सत्य है और सर्वथा सत्य है कि जब आप स्वयं अपनी सहायता करते हैं तभी देवता भी आपकी सहायता करने के लिए बाध्य होते हैं। आप तभी सब कुछ पा सकते हैं जब आत्मनिर्भर बनकर पुरुषार्थ करते हैं। आपके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

जब हम दूसरों पर निर्भर होते हैं तब प्रत्येक वस्तु दूर चली जाती है लेकिन जब आत्मनिर्भर बनते हैं, तब संसार के सभी पदार्थ हमारी ओर खिंचे चले आते हैं।

यदि आप अपने को निर्धन, तुच्छ जीव मानते हैं तो आप वही हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि आप आत्मसम्मान की भावना से परिपूर्ण हैं तथा आत्मनिर्भर हैं तो आपको सम्मान, स्नेह, सफलता प्राप्त होती है। स्वयं को दीन–हीन, दुर्बल, भाग्यहीन कभी न समझें। आप जैसे सोचेंगे वैसे ही बन जायेंगे। जब तक आप बाह्य शक्तियों पर निर्भर रहेंगे तब तक आपके कार्यों का परिणाम असफलता ही रहेगा।

जब आप हृदय में विराजमान ईश्वर पर भरोसा करते हुए शरीर को कर्म में नियुक्त कर देंगे तो आपकी सफलता निश्चित हो जायेगी। स्वयं पर विश्वास करें, स्वयं पर निर्भर होने की आदत डालें। फिर देखिये सफलता कैसे आपके कदम चूमती है?

राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में :

सिंहों पर अपना अतुल भार मत डालो,
हाथियों! स्वयं अपना तुम बोझ सँभालो।
यदि लदे फिरे, यों ही, तो पछताओगे,
शव मात्र आप अपना तुम रह जाओगे।

सुनीता सिंह, राजभाषा प्रकोष्ठ

चाणक्य

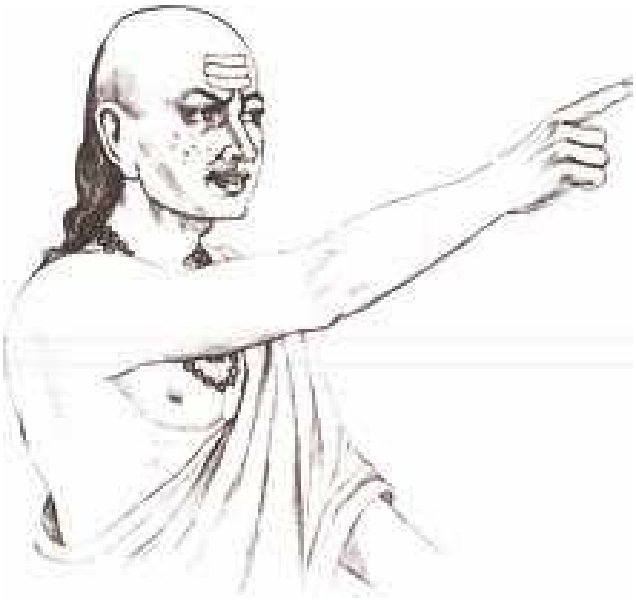

बच्चों आप सब इस कहानी को पढ़ने के बाद विचार करना हमें अपने जीवन में कैसा बनना है–

गरीबी इतनी कि जिसकी हद नहीं, शक्ल ऐसी कि कोयले की खानों में काम करने वाले भी बेहतर होंगे। इसके बावजूद चाणक्य ने यह कहना शुरू किया कि मैं गरीब नहीं हूँ। लोग इस जिद्दी ब्राहम्ण की बात सुनते और अपना रास्ता पकड़ते।

उन दिनों मगध में नंद का शासन था। नन्द दुराचारी था। उससे प्रजा संतुष्ट नहीं थी। वह अत्याचार करता था। राजा प्रजा का पिता होता है, उसका पालन करना राजा का कर्तव्य है, ऐसा धर्म में कहा गया है। अपने पालन–पोषण के लिए राजा नन्द के पास चाणक्य ने जाने का विचार किया। रास्ता बीहड़ था, ऊँचा–नीचा, चक्करदार, जाने को सवारी नहीं थी। चाणक्य ने पैदल रास्ता तय करने का विचार किया। रास्ते में कुश–काटे लगे, पैरों से खून बहने लगा। चाणक्य ने अपनी इन रुकावटों को जड़ से मिटाने का निश्चय किया और अनेक कुश काटे उखाड़ डाले। उनको जड़ से नष्ट करने के लिए वे निकट के गाँवों से मट्ठा लाए और उनकी जड़ों में डाला।

चाणक्य नन्द के सामने पहुँचे और उन्होंने नौकरी मांगी। नन्द ने ऐसे कुरूप और अक्खड़ व्यक्ति को लौटा दिया। भूख से व्याकुल चाणक्य भोजनालय में पहुँच गए। वहाँ उन्होंने सेवकों से भोजन मांगा। दया करके सेवकों ने उन्हें भोजन दे दिया। ज्योंहि भोजन करने को थे कि राजा नन्द आ पहुँचा और उसने चाणक्य को लौटा दिया। तभी अपनी चोटी की गांठ खोलकर चाणक्य ने प्रतिज्ञा की कि मैं तेरे वंश को नष्ट करके ही इसे बांधूँगा। इस पर चाणक्य को भगा दिया गया।

निराश और अपमानित होकर चाणक्य जनता को राजा नन्द के खिलाफ भड़काने लगे। एक गरीब व्यक्ति कभी सिंहासन पलट सकेगा, ऐसा लोग सोच नहीं सकते थे। इसलिए ज्यादातर लोग तो उनसे बहस नहीं करते थे, मुंह फेर लेते थे, पर थोड़े से लोग ऐसे थे जो उनके साथ थे।

उन दिनों चन्द्रगुप्त की वीरता की चर्चा हुआ करती थी। वे चन्द्रगुप्त से मिले, और इस प्रकार विद्वता और वीरता का संगम हुआ। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को रास्ता बताया और अपने पक्ष में एक बहुत बड़ा संगठन तैयार किया। पहले काम लुकाछिपी से शुरु किया गया, लेकिन बाद में जब ताकत बढ़ गई तो एक दिन चन्द्रगुप्त ने राजा नन्द से सीधी टक्कर ली। विजय चन्द्रगुप्त की हुई, चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी हुई और उन्होंने तब अपनी शिखा बाँधी।

चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को अपना मंत्री नियुक्त किया और गुरु के रूप में उनकी पूजा की। चाणक्य ने नीतिशास्त्र का एक ग्रन्थ लिखा जिसे कौटित्य अर्थशास्त्र कहते हैं। चाणक्य के प्रयत्न से ही हमारे देश में सिकन्दर के पांव न जम सके, उसका सेनापति सैल्यूकस अपनी पुत्री की शादी चन्द्रगुप्त के साथ करके वापस लौट गया। चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाने में चाणक्य का बहुत बड़ा हाथ है। इससे पता चलता है कि एक गरीब व्यक्ति अपने श्रम और लगन के बल से राजा बनाने वाला भी बन सकता है।

स्रोत – पुस्तक "ये महान कैसे बने"

न्याय

रोम का सम्राट एक बार बीमार हो गया। उस समय के बड़े-बड़े योग्य चिकित्सक इलाज के लिए बुलाये गये। अच्छी-अच्छी दवाएँ दी गई, परन्तु किसी भी दवा से फायदा नहीं हुआ। मर्ज भी पहले से अधिक बढ़ता गया। एक दिन एक बुड्ढ़ा आया, उसने सम्राट की जाँच की। फिर उसने कहा- "जान बचाने का एक ही तरीका है। किसी अन्य व्यक्ति के पित्ताशय से दवा बनाकर सेवन कराने से ही सम्राट की जान बचाई जा सकती है।"

सम्राट को बचाने के लिए चिकित्सक इस तलाश में घूमने लगे। आखिर एक लड़का मिल गया। उसके माता-पिता गरीब थे। चिकित्सक ने उस लड़के के पिता को काफी धन का लोभ दिया। भूख के आगे बेटे का महत्व फीका पड़ गया। काफी धन लेकर पिता ने बेटे को चिकित्सक के हाथ बेंच दिया। लड़के को दरबार में लाया गया। सम्राट ने अपने पुरोहित की राय पूछी। पुरोहित ने कहा- "जहाँपनाह, मुल्क बड़ी चीज होती है, परन्तु उससे भी बड़ा होता है उसका शासक। वह मुल्क की रक्षा करता है और उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ देकर सुखी रखता है। अपनी प्रजा को संतुष्ट रखना ही उसका कर्तव्य रहता है। देश और लोगों की हिफाजत करने वाले सम्राट के लिए एक-दो जानों की कुर्बानी कोई अपराध नहीं है। "

बस इतना कहना काफी था। लड़के को सम्राट के सामने खड़ा कर दिया गया। जल्लाद भी तलवार लेकर आ पहुँचा।

चिकित्सक दवा तैयार करने वाले साधनों को लेकर खड़ा हो गया। बस सम्राट के आदेश की देर थी। उस लड़के ने एक बार आकाश की ओर देखा और जोर-जोर से हँसने लगा। सम्राट अचरज में पड़ गया। तलवार का वार रुक गया। सम्राट ने लड़के से हँसने का कारण पूछा। लड़के ने कहा-"जिस देश में माँ-बाप धन के लिए संतान को बेचें, पुरोहित बेकसूर मनुष्य की हत्या को सही करार दें, चिकित्सक मानवता को छोड़कर केवल धन के लिए चिकित्सा करें, देश और प्रजा की रक्षा करने वाला शासक दूसरों की हत्या से अपनी जान बचाने की कोशिश करे, वहाँ तो ऊपर वाले ईश्वर के न्याय का ही भरोसा करना पड़ेगा। इसलिए दीन-दुनिया के उसी मालिक से अर्ज कर रहा था। अब उसका न्याय देखना है। " लड़के की बात सुनकर सम्राट की आँखें झुक गईं। जल्लाद को वापस रवाना कर दिया। सम्राट ने अपनी भूल पर उस लड़के से माफी माँग ली।

स्रोत – पुस्तक 'विश्व की लोक कथाएँ'

देवता के शव को मुक्त करो

देवता के शव को मुक्त करो
देवता दुखी हैं
जेठ के उगते हुए सूरज को भाव–विभोर होकर देखते हैं
कितना स्वतंत्र हैं ये।
देवता कितने वर्षों से निष्कम्प, निश्चल उदास, अतृप्त
अपनी संतानों के क्लेश की सघनता से वीतराग,
पुरोहित की असहाय कठपुतली बन,
अन्यमनस्क, असहाय, असमर्थ हैं।
सारा दिन–
धूनों से उनका दम घुटता है
नारियल फूटते रहते हैं, उन्हें सर दर्द होता है
हलवा–पूरी चढ़ते हैं, उन्हें उदर विकार रहता है
कपड़ों, फूलों के ढ़ेर, छत्र उन्हें विचलित करते हैं
भजनों का शोर उन्हें कष्ट देता है
क्या तुम में से कोई देवता की इस अवस्था में
एक दिन शांति से बैठ सकता है?
देवता देखते हैं–
यहाँ बैठकर फूट–फूट कर रोती
सास को बहू के दु:ख से
देवता के समीप आकर –
चरित्रहीन, लम्पट, अधिकारी, विद्वान व व्यवसायी
मनुष्यता से दूर हो जाते हैं
हड्डियों से कृत्रिम देशी घी बनाने वाले यादव जी
जब सोने के थाल में नये
गोटेदार चोले लेकर आते हैं
तो उनकी आँखों से खून झरता है।
देवता सोते नहीं रोते रहते हैं।
और द्विवेदी जी थाली से आधा–तिहाई
अपने गाँव भेजते रहते हैं, देवता देखते हैं।
उन्हें प्यार है तो उस दलित जोड़े से–
जो पहली पीढ़ी में मंदिर में आया है
और देवता को मात्र देख कर ही
मुग्ध हो जाता है।
वह अपने साथ कुछ नहीं लाया है सिवाय भक्ति के।
देवता को धन्यवाद मिलते हैं उनसे, जो आते हैं–
पिता को सफलतापूर्वक पागलखाने में डालकर,
कन्या से मुक्ति पाकर,
झूठे मुकदमे जीतकर,
ऊपरी आमदनी वाली सरकारी नौकरी पाकर,
कब्रिस्तान की जमीन पर घर बनाकर,
चुनाव जीतकर, डिग्री लेकर,
आवारा, अयोग्य लड़कों के लिये योग्य, सुंदर बहू पाकर,
देवता से समीपता और मनुष्यता से दूरी–
क्या एक ही बातें हैं?
और एक दिन एक वेश्या रोती हुई आई
उसकी चौदह साल की अपाहिज लड़की
हुई थी बलात्कार की शिकार
देवता की एक चीख निकली
और वे निष्प्राण हो गये।
देवता के शव को मुक्त करो,
देवता के शव को मुक्त करो, देवता के शव को मुक्त करो
मंदिर से बाहर आ जाओ
एक दूसरे से प्यार करो
मनुष्यता चारपाई पर है, बूढ़ी है
उसके जीवन की गुणवत्ता बढ़ाओ
वह तुम्हारी कल्याणमयी माँ है
देवता मुक्ति चाहते हैं

प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा, मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग

भाषा : साहित्य : देश

इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप है कि विज्ञान की सहायता से जहाँ बाह्य भौगोलिक बंधन तड़ातड़ टूट गये हैं वहाँ मानसिक संकीर्णता दूर नहीं हुई है। ऐसा कीजिए कि एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को समझ सके। एक धर्म वाले दूसरे धर्म की कदर कर सकें। एक प्रदेश वाले दूसरे प्रदेश वाले के अंतर में प्रवेश कर सकें। ऐसा कीजिए कि इस सामान्य माध्यम के द्वारा आप सारे देश में एक आशा, एक उमंग और उत्साह भर सकें। और फिर ऐसा कीजिए कि हम इस हिन्दी भाषा के जरिये इस देश की और अन्य देशों की, इस काल की और अन्य कालों की समूची ज्ञान–सम्पत्ति आपस में विनिमय कर सकें।

स–आभार
डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी

एसिडिटी

एसिडिटी सामान्य शब्दों में अम्ल का उल्टा प्रवाह होना अथवा अ–पचित भोजन का पेट से वापस ईसाफेगस अथवा मुँह में आना है।

यह मुख्यत: अम्ल के अधिक स्राव से होता है। सीने में जलन मुख्यत: स्टर्नम हड्डी के पीछे होने वाली जलन है।

कारण :

✓तनाव
✓अत्यधिक भोजन खाना
✓शराब का सेवन
✓सिगरेट पीना
✓मोटापा
✓असमय भोजन करना
✓कुछ दवायें जैसे एस्प्रिन, पेन किलर्स
✓खाने के तुरंत बाद शारीरिक श्रम करना
✓कुछ भोज्य पदार्थ जैसे टमाटर, प्याज, साइट्रस फल, कॉफी, चाय इत्यादि अम्लता पैदा कर सकते हैं

लक्षण :

✓खाने के बाद सीने में जलन होना
✓खट्टी डकारें आना
✓इस तरह का एहसास कि खाने के बाद भोजन फंसा हुआ है
✓यदि सीने के पास होने वाली असुविधा एक्सरसाइज से बढ़ जायें तथा आराम करने से बेहतर हो जाये
✓सीने में जलन लगातार बनी रहे
✓यदि सीने में जलन के साथ निगलने में परेशानी हो, सांस लेने में परेशानी हो, उल्टी लाल या काले रंग की .....हो
✓चक्कर आ रहे हों

क्या करें क्या न करें :

✓तनाव के चिह्न पहचानें और उसके कारण जानें। कार्यस्थल पर तनाव कम करने के लिए लंबे कार्य के घंटों को कम करें
कार्य से संबंधित परेशानियों को घर लेकर न जायें
✓आराम करने के लिए समय निकालें। भोजन से पहले और बाद में आराम करें और भोजन को प्रसन्न मन से खायें
✓भोजन समय से करें। भोजन कई बार करें पर कम मात्रा में करें
✓खाने के तुरन्त बाद न लेटें
✓रासायनिक एडिटिव मिले हुए खाद्य पदार्थ से बचें। ज्यादा मिर्च मसालेदार या वसायुक्त भोजन से बचें
✓मदिरा, कॉफी का अत्यधिक सेवन रोकें
✓सिगरेट पीना छोड़ना अत्यधिक फायदेमंद है
✓दर्द निवारक दवाइयों का सेवन सावधानीपूर्वक ही करें। अम्लता बढ़ाने वाली औषधियों के उपयोग से बचें
✓सीने में जलन के समय ठंडा दूध पीयें
✓होम्योपैथिक चिकित्सक से सम्पर्क करें

डॉ एस के मिश्रा, चिकित्सक
स्वस्थ केन्द्र

प्रकृति की विविधताएं आदिकाल से ही मनुष्य के लिए आश्चर्य एवं प्रेरणा का स्रोत रही हैं। विभिन्न प्राकृतिक क्रियाओं से मनुष्य ने वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया एवं कालांतर में उन्हीं सिद्धांतों का उपयोग कर कई आश्चर्यजनक क्रिया कलापों की व्याख्या भी की। परन्तु ज्यों-ज्यों मानव प्रकृति के अद्भुत रहस्यों से परदा उठाने का प्रयास करता है त्यों-त्यों नए रहस्य सामने आकर आश्चर्य प्रकट करने को विवश कर देते हैं। आधुनिक विज्ञान द्वारा खोजे गए कतिपय अविष्कार प्रकृति में करोड़ो वर्ष से उपस्थित हैं। अपने आस-पास के वातावरण में उपस्थित उन्हीं आश्चर्यों में से कुछ उदाहरण ध्यान देने योग्य हैं:

ततैया एक विलक्षण जीव—ततैया, बर्रैया, भिड़ (वैज्ञानिक नाम – vespula vulgari) के नाम से जानी जाने वाली जानी पहचानी कीट है। यह उड़ने वाली जीव अपने पीड़ादायक डंक के लिए प्रसिद्ध है। यह पृथ्वी के लगभग हर भाग में पायी जाती है और सामाजिक प्राणियों की श्रेणी में उसकी गणना होती है। यह लगभग 15-20 सेंटी मीटर लम्बा पीले रंग की होती है तथा काली धारियां भी होती हैं। ततैया पेड़-पौधों फूलों पत्तियों तथा फलों का रस चूसती है तथा अन्य कीटों पतंगो को मारकर उनसे प्रोटीन प्राप्त करती है। बंसत के प्रारंभ में रानी ततैया एक बार आरंभिक छत्ते का निर्माण कर उसमें अंडे देती है। उनसे सीमित संख्या में श्रमिक एवं अन्य ततैया उत्पन्न होते हैं जो वयस्क होकर छत्ते के आकार को विस्तार एवं सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। सामान्य तौर पर हम इसके कष्टकारी डंक से ही परिचित होते हैं जो साइजोलाइटिक पेप्टाइड युक्त जहर से भरा होता हैं यह जहर हमारी लाल रक्त कोशिका भित्ति को नष्ट कर रक्तस्त्राव की क्षमता रखता है वैज्ञानिक इसका प्रयोग एड्स जैसी भयानक बीमारी के विषाणुओं को नष्ट करने की संभावनाओं पर शोध कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त ततैया का छत्ता भी कम आश्चर्यजनक नहीं होता है। एक बड़े छत्ते में लगभग 5000 तक ततैया निवास करती हैं। यह बड़े परिश्रम से आस-पास से सूखी लकड़ी को चबाकर उसमें लार का अंश मिलाकर लुग्दी बनाती है। उसी लुगदी को आकार देकर कागज जैसा छत्ता,जो लगभग मधुमक्खी के छत्ते से मिलता जुलता तैयार करती है। उसमें हजारों कोश होते हैं, जिनमें अंडे से लारवा बनते हैं जो एक रेशम जैसा धागा निकालकर कोश के मुँह पर एक सफेद रंग की टोपी बुनकर अपने को भीतर सुरक्षित कर लेते हैं। यह टोपी लारवा के वयस्क अवस्था तक के रूपान्तरण के अंतराल में शिशु की रक्षा करती है। कालांतर में यह टोपी कमजोर हो जाती है और वयस्क ततैया इसे तोड़कर बाहर आ जाती है। वैज्ञानिक शोध से ज्ञात हुआ है कि कोश के भीतर का तापमान 25 डिग्री के आसपास बना रहता है। भीषण गर्मी के मौसम मे ततैया बाहर से अपने मुँह मे पानी लाकर इस टोपी को भिगोती रहती हैं । जिससे भीतर का तापमान नियंत्रित रहता है। ततैया के एक बड़े भाई बर्र (वैज्ञानिक नाम : Vespa orientalis) से भी हम आप परिचित होंगे। मिठाई की दुकानों पर मंडराते ये भी कष्टकारी डंक मारने में सक्षम होते हैं । इनकी लंबाई 35-50 सेंटीमीटर तक होती है और सफेद या पीले शरीर पर गहरे कत्थई रंग के चकत्ते उनकी सुंदरता को चार चाँद लगाते हैं । उनकी चमकती सतह वास्तव में सूक्ष्म धारियों से भरी होती है जिससे इनका वास्तविक क्षेत्रफल बढ़ जाता है । उनके भूरे एवं पीले चकत्ते या पट्टियाँ क्रमश: मेलानिन एवं जैंथोप्टेरिन नामक पदार्थ के कारण है जो त्वचा को सूरज की झुलसा देने वाली धूप से रक्षा एवं विटामिन डी उत्पन्न करने के लिए सांवलापन प्रदान करता है।

वैज्ञानिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि बर्र तेज धूप मे ज्यादा सक्रियता दिखाता हैं । इसका कारण उसकी उपरोक्त संरचना एवं इन पदार्थो की उपस्थिति से सौर ऊर्जा मे परिवर्तित होना है । यह प्रक्रिया सौर ऊर्जा एवं सौर विद्युत ऊर्जा संबन्धित आविष्कारों का ही एक रूप है ।

आशा है आप जब भी ततैया के छत्ते या बर्र को आसपास मंडराते देखेंगे तो प्रकृति कि इस आश्चर्यजनक एवं जटिल रचना को जरूर याद रखेंगे एवं उसके विचित्र छत्ते के प्रति सम्मान प्रकट करेंगे । क्रमश:

फूल सिंह चौहान
इन्स्ट्रूमेंटेशन इंजीनियर, रासायनिक अभियांत्रिकी विभाग

हारवर्ड विश्वविद्यालय में मनोरोग एवं मानव विज्ञान के प्राध्यापक आर्थर क्लिनमैन का मानना है कि ''समाज में किसी बीमारी अथवा आपदा से पीड़ित व्यक्ति उस घटना को अपने परिवेश में विद्यमान सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों के साथ जोड़कर देखता है, अर्थात बकौल क्लिनमैन किसी बीमारी अथवा आपदा से पूरी तरह उबरना सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया की उन व्याख्याओं का अंग है जो ऐसी घटनाओं, स्वत्व एवं उनके भविष्य से संबद्ध है।" क्लिनमैन ने अपनी किताब Rethinking Psychiatry में उपर्युक्त तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''आपदा के दौरान पश्चिमी देशों में लोगों द्वारा अपने आप को संकट से उबारने हेतु किसी मनोरोग चिकित्सक की मदद लेने की परिपाटी चलन में हो सकती है किन्तु पश्चिम से इतर देशों में यह परिपाटी चलन में नहीं है। बहुधा देखने में आता है कि पश्चिम से इतर देशों में आपदा, बीमारी एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए धार्मिक मान्यताएँ उनके जीवन को जीवंत अर्थ देने में मदद करती हैं तथा स्व–उपचार में सहायक होती हैं।" मैंने अपने इस लेख में कच्छ के भूकंप एवं गोधरा दंगों के पश्चात वहाँ मौजूद लोगों के मध्य अपने मानव–जाति–वर्णन– संबंधी (एथनोग्राफिक) अध्ययन को उद्धृत करते हुए आत्म और न्याय पर आधारित स्व–उपचार की प्रक्रिया को समझाने का प्रयास किया है, जिसके मूल में संपूर्ण लोकातीत अथवा आध्यात्मिक मान्यताएँ हैं।

वर्ष 2001–2004 की अवधि के दौरान गुजरात के कच्छ क्षेत्र में भूकंप पीड़ितों से मिलने के बाद पता चला कि बहुधा लोग भूकंप के कारण हुई जान–माल की हानि को अपने कर्म का फल मानते हैं। यहाँ कर्म का अर्थ अपने परिवार, समुदाय, प्रकृति एवं स्वयं के प्रति कर्तव्य निर्वहन की प्रक्रिया से है। मेरे मानव–जाति–वर्णन–संबंधी (एथनोग्राफिक) अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि पीड़ित लोग इस बात पर दृढ़ता से विश्वास करते हैं कि सर्वशक्तिमान ईश्वर उन लोगों के साथ न्याय करता है जो अपने स्वार्थ को त्यागकर कर्म के मार्ग को अपनाते हैं तथा कर्म करने से लोगों को शांति मिलती है। हम जानते हैं कि कच्छ में तीन से चार वर्ष के अंतराल के बाद पर्याप्त मात्रा में वर्षा होती है। अल्पवृष्टि तथा सिंचाई की उचित व्यवस्था के अभाव में यहाँ के किसान अपने खेतों में खेती नहीं कर सकते हैं। कच्छ क्षेत्र के सेलारी नामक गाँव में शोध के दौरान मेरी भेंट एक ऐसे किसान से हुई जिसके पास कृषि योग्य भूमि होने के बावजूद वह दूसरे बड़े किसान की वाड़ी (गुजरात में ऐसे खेतों को वाड़ी कहा जाता है जहाँ बिजली के पम्प सैट द्वारा सिंचाई करने की सुविधा उपलब्ध हो) में दिहाड़ी मजदूर के रूप मे काम कर रहा था। इस किसान ने सेलारी गाँव के भूकंप में ध्वस्त हुए बस स्टाप का पुर्ननिर्माण कराया था। जानकारी मिली कि भूकंप के कारण उसकी तेरह वर्ष की बेटी की मौत हो गई थी। राज्य सरकार की तरफ से उसे उसकी बेटी की मौत पर 80,000 रु. का मुआवजा मिला था। उसने अपने प्रयास से 20,000 रु. का प्रबंध कर, कुल एक लाख रु. की लागत से अपने गाँव के बस स्टाप का पुर्ननिर्माण कराया था। बातचीत के दौरान उसने बताया, ''बस स्टाप को देखकर बेटी की याद ताजा हो जाती है। मैं अपनी बेटी फुली बेन से बहुत ज्यादा प्यार करता था। भले ही वह प्रत्यक्ष रूप में मेरे सामने न हो किन्तु सदैव मुझे प्रेरणा देती रहती है कि मैं समाज में खुशहाली के लिए अपना कर्म करता रहूँ। मैंने उसकी ही इस सीख से गाँव में बस स्टाप का पुर्ननिर्माण करवाया है।''

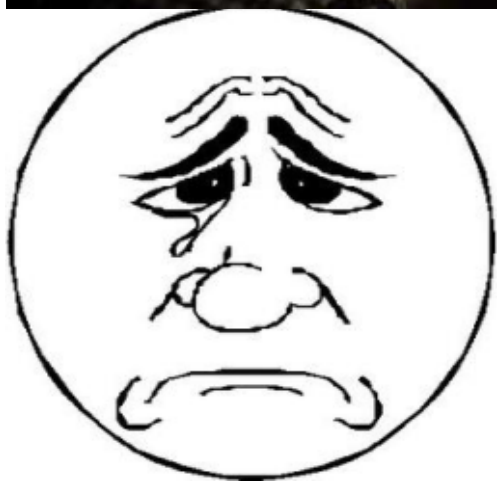

मैंने इसके बाद गोधरा दंगा पीडित क्षेत्रों का दौरा किया जहाँ मेरी मुलाकात पावागढ़ रोड स्थित चाय की दुकान में चाय बेचने वाले मामद चाचा से हुई। दंगे के भयावह स्थिति एवं उसके परिणाम की चर्चा करते हुए

वे बताने लगे, "मैं उस समय अपनी पेंशन संबंधित कार्य से कालोल गया हुआ था। मैं नहीं जानता था कि जीवित रह पाऊँगा अथवा दंगे में मारा जाऊँगा। मैं सोचने लगा कि अगर मुझे सुरक्षित स्थान पर पहुँचना है तो उस स्थान को पार करके जाना होगा जहाँ दंगा भड़का हुआ है। मुझे अभी भी वह क्षण याद है जब मैंने उस स्थिति से निपटने के लिए अपनी आँखे बंद करके अल्लाह को याद करते हुए तवक्कल तो अल अल्लाह कहा था क्योंकि मुझे अल्लाह पर पूरा विश्वास था। मैंने अल्लाह को महज इसलिए याद नहीं किया था कि वह मुझ पर दया करे, बल्कि इसलिए याद किया था कि मैं यह महसूस कर सकूँ कि अल्लाह मेरे पास है, हमारे चारों तरफ है। "तवक्कल तो अल अल्लाह का मतलब है" – मैं और मेरा शरीर अल्लाह का है। मुझे मानवता एवं मानवीय मूल्यों का ध्यान रखना था जोकि अल्लाह का दिया हुआ वचन है । इन पंक्तियों ने मुझमें साहस का संचार किया तथा इस दृढ़ निश्चय के साथ कि मुझे स्वयं अपनी सुरक्षा का प्रयास करना है, मैं दंगा वाले क्षेत्रों को पार करने के लिए आगे बढ़ने लगा। मैं यह जानता था कि मेरा जिन्दा रहना अथवा मारा जाना अल्लाह की मर्जी पर निर्भर है। किसी भी दशा में अल्लाह मेरे साथ होगा; ऐसा मुझे विश्वास था। उस दौरान दंगाईयों ने मुझे देख लिया फिर भी मैं उस स्थान को पार कर आगे निकल गया। मैं जिन्दा था। हालाँकि मुझे इस बात का मलाल है कि गाँव के मेरे हिन्दू मित्रों को मेरा घर नहीं जलाना चाहिए था फिर भी जब मेरे पुराने हिन्दू मित्र मुझसे मिलने आये तो मैं उनसे बड़े मित्रभाव तथा विनम्रता के साथ मिला।"

उपर्युक्त दो स्थितियों में हम देख सकते हैं कि आपदा एवं दंगे जैसी स्थितियों में पीड़ित लोगों के भयाक्रांत होने पर भी उन्हें आत्म और न्याय पर आधारित आध्यात्मिक अवधारणाएँ उनके जीवन को जीवंत अर्थ देने में मदद करती हैं। हम जानते हैं कि विश्व भर में मानसिक-स्वास्थ्य संबंधी परामर्शदाताओं, मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सकों की संख्या पर्याप्त नहीं है । इस मामले में विकासशील देशों की स्थिति बद से बदतर है । ईश्वर की कृपा से हमारे देश में अभी भी ऐसी सामजिक-सांस्कृतिक विचारधाराएँ, न्याय संबंधी धारणाएँ तथा मानव मूल्य विद्यमान हैं जो त्रासदी अथवा तबाही के दौरान स्व-उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

डॉ. कुमार रवि प्रिया
सहायक प्राध्यापक
मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग

मार्ग

अपनी ही छलना में
स्वयं क्षतविक्षत होते समय
बहुत बेचैन करता है,
जैसे मन के निभृत कोने में
होता बम का विस्फोट।
अपनी आँखों के सामने अगर,
टूट जाए अपना कल्पित प्रसाद,
लगता है जैसे धरती शेष नहीं रही,
भर गई है शून्यता में,
खो गई है अंधेरी गुफा में।
कलुषित कदाचारी मन को,
द्वेषपूर्ण अपने हृदय को,
गंगा के पावन जल से,
क्या धोया जा सकता है?
हरि नाम जपते-जपते
कुछ ही पल के लिए,
बगुला भगत बन सकते हैं हम।
जीवन के कंटकित पथ पर
लड़ना होगा अपने साथ,
अपनी आत्मशक्ति के बल पर
अपने को मुक्त करने के लिए।
कलुषित मन के अंधकार से।
मुक्त हो सुरभित हो उठेगा
जीवन का शेष यात्रापथ,
सीमातीत आनन्द की महक से
नवोदित सूरज की रक्तिम आभा से।।

डॉ. डी.पी. मिश्र
वांतरिक्ष अभियांत्रिकी विभाग

प्रकृति और मानव

हवा हूँ हवा, मैं बसंती हवा हूँ
सुनो बात मेरी अनोखी हवा हूँ
नहीं कुछ फिक्र है, बड़ी ही निडर हूँ
हवा हूँ हवा, मैं बसंती हवा हूँ

अहा ! प्रकृति के ऐसे खूबसुरत चित्रण से किसका मन चंचल नहीं हो जाएगा । किसी ने सही ही कहा है कि अगर प्रकृति न हो और संसार का व्यापक नैसर्गिक सौन्दर्य हवा हो जाए तो हमारे जीवन का सार ही समाप्त हो जाएगा, पक्षियों के कोलाहल की आवाज मंद पड़ जाएगी, बाँसुरी से निकलने वाली सुरमयी संगीत विलीन हो जाएगी और यह समस्त धरती एक जीती जागती कब्रगाह में तब्दील हो जाएगी । प्रकृति से हम मानवों का रिश्ता चिरकाल से चला आ रहा है । कभी प्रकृति हमारे दाता की तरह हमें रहने और जीने के लिए हर संभव संसाधन उपलब्ध कराती है तो कभी एक माँ की तरह अपनी ममतामयी छाया में हमें सींचकर अकुंरित होने का अवसर देती है कभी एक मित्र की तरह हमारे सारे दु:ख–सु:ख अपने साथ बांटती है और हमें अकेलेपन का एहसास नहीं कराती है । वहीं अगर हम अपनी राह से भटक जाएँ; प्रकृति के साथ खिलवाड़ करें; तब वह एक पिता की भांति अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर; हमें सीख देती है कि हम भले ही विज्ञान; परमाणु आदि विधाओं में खूबसारी विद्वता हासिल कर लें; मगर उसके निष्कर्ष के सामने हमारे सारे प्रयास बौन ही साबित होंगे । प्रकृति सही मायनों में हमें जीवन जीने की कला सिखाती है ।

प्रकृति नि:संदेह ही निश्छल और नि:स्वार्थ भावना के साथ हमारी सहायता के लिए सदैव तत्पर रहती है पर हम मानवों ने प्रकृति और उसके विभिन्न अंगों को उसके परोपकार के बदले क्या दिया? कुछ भी तो नही । अरे जनाब! देने की बात तो छोड़ ही दीजिए; हम तो अपने अंधाधुंध करतूतों से बाज आने के लिए तैयार ही नहीं हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानों, प्रकृति का खून बहाकर हम और ज्यादा गौरवान्वित महसूस करते हैं, जैसे हमने साक्षात् संजीवनी पहाड़ अपने कंधों पर उठा लिया हो।

बड़े खेद और चिंता की बात का विषय है । आदि काल में जब हमारे पास संसाधनों की कमी थी, कम से कम हम प्रकृति से आत्मीयता तो रखते थे; प्रकृति की साक्षात् पूजा करते थे । पर आज इक्कीसवी सदी में जब हमारी क्षमताएं अकूत हो गई हैं तब न जाने क्यों हमारे अंदर यह भावना घर कर गई कि हमने संपूर्ण प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है । मानो प्रकृति हमारे हुक्मों के आगे घुटने टेक देगी । वैश्वीकरण, औद्योगीकरण, अंतरिक्ष विज्ञान का जबरदस्त विस्तार आदि की आँधी में हमारे भावनात्मक चक्षु जैसे बंद से हो गए हैं और हम अपने हाथों से ही प्रकृति का हनन कर रहे हैं जिन्हें कभी प्रकृति की ममतामयी और गरिमामयी छाया ने सींचा था ।

विज्ञान की दिशा और दशा पर हम जैसे अपना नियंत्रण खो बैठे हैं ।
शायद रामधारी सिंह दिनकर जी ने ठीक ही कहा था ।

"सावधान मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार
तो फेक दे इसे तजकर तू, मोह– स्मृति के पार
झेल न सकता तू इसके प्रहार जब यह
करेगा प्रकृति पर वार ।
काट लेगा अपने ही अंग, बड़ी
तीखी है इसकी धार ।"

समय बदल गया है । हमारे तौर तरीके भी बदल गए हैं।
पहले हमें गंगा – जमुना की धाराओं के बीच हिमालय के गंगनचुंबी शिखरों के बीच आनन्द और सुख का अहसास होता था आज इनका स्थान कम्प्यूटर, इंटरनेट, सिनेमाघर, पार्टी आदि चीजों ने ले लिया है।
ऊंची–ऊंची बहुमंजिली इमारतों में कैद इंसानी कठपुतलियाँ नैसर्गिक सुन्दरता का क्या खाक एहसास कर पाएगें । हमारा जो प्रकृति से एक भावनात्मक जुड़ाव था सबसे आगे निकलने की मारा मारी में, वह गुमनामी के एक गहरे अंधकार में विलीन हो गया है । पर सच पूछिए तो प्रकृति आज भी उतनी ही खूबसूरत है, उतनी ही गरिमामयी, उतनी ही मित्रवत् है । कल भी उसका यौवन काल था, आज भी उसका यौवन चल रहा है, वही मस्त चाल और वही बेफ्रिकी ।

''कल–कल करती छल–छल करती,
चट्टानों से क्रीड़ा करती,
कभी इधर मुड़, कभी उधर मुड़
वन पर्वत में लुकती छिपती ।"

प्रकृति सदैव अजेय, अमर और अजर रहेगी ।
आईये संकल्प करें कि हम सदैव इसकी रक्षा करेंगे।

अभिषेक गौरव, छात्र

भारत का विकास

विकास के कई पहलू हैं क्योंकि लोगों की विकास के बारे में अलग-अगल धारणाएं हैं। भारत के किसी छोटे से गाँव में रह रहे भूमिहीन ग्रामीण मजदूर के लिये गांवों के ही किसी विद्यालय में अपने बच्चों को शिक्षा प्रदान करने में सक्षम होने तक में ही उसका लक्ष्य सिमट जाता है । वहीं शहरी परिवेश में पढ़ी लिखी मध्यम वर्गीय परिवार की लड़की अपने भाई के समान ही स्वतंत्र फैसले करना चाहती है । उसका लक्ष्य है विदेश की किसी उच्च वरीयता प्राप्त विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करना।

लोगों के विकास के लक्ष्य भिन्न हो सकते हैं और साथ ही साथ यह भी संभव है कि एक के लिए जो विकास है दूसरे के लिए विकास न हो, यहाँ तक कि वह दूसरे के लिये विनाशकारी भी हो सकता है । उदाहरण के लिए अधिक बिजली पाने के लिए उद्योगपति ज्यादा बांध बनाना चाहते हैं । लेकिन इससे जमीन जलमग्न हो सकती है और कई लोग बेघर हो सकते हैं, उनका जीवन अस्त-व्यस्त हो सकता है ।

हमारी क्या आकांक्षाएँ और इच्छाएँ हैं, कि हम क्या करना चाहते हैं? इसी तरह हम भी सोचते हैं की कोई देश कैसा होना चाहिये? हमें किन अनिवार्य वस्तुओं की आवश्यकता है? क्या सभी का जीवन बेहतर हो सकता है? लोग मिलजुल कर कैसे रह सकते हैं और अधिक समानता कैसे हो सकती है ? एक बात तो है कि मजदूर, किसान, शिक्षित नवयुवक सब अपनी आय के विकास में अपना विकास निहित देखते हैं। इसके अतिरिक्त लोग बराबरी का व्यवहार, स्वत्रंता, सुरक्षा और दूसरों से आदर मिलने की इच्छा भी रखते हैं क्योंकि जीने के लिये भौतिक वस्तुएँ ही पर्याप्त नहीं होतीं।

यदि लोगों के लक्ष्य भिन्न हैं, तो उनकी राष्ट्रीय विकास के बारे में धारणा भी भिन्न होगी । लेकिन क्या सभी विचारों को बराबर का महत्व दिया जा सकता है ?

विश्व बैंक की 2006 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार देशों के विकास स्तर में वर्गीकरण करने के लिए प्रतिव्यक्ति आय का प्रयोग किया गया था । वे देश जिनकी 2004 में प्रतिव्यक्ति आय 4,53,000 रु. प्रति वर्ष या उसे अधिक थी उसे समृद्ध देश और वे देश जिनकी आय 37,000 रु प्रतिवर्ष या उससे कम थी उन्हें निम्न आय वाला देश कहा गया ।

व्यक्तिगत आकांक्षाओं और इच्छाओं की तरह हम किसी देश या क्षेत्र के विकास के बारे में सोचते हैं तो हम औसत आय के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण लक्षणों के विषय में भी सोचते हैं ।

यह भिन्न-भिन्न लक्षण क्या-क्या हो सकते हैं? पहला लक्षण है एक ही देश के भीतर विकास दरों में भारी भिन्नता होना। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत देश की प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष आय 50,000 रु. से भी अधिक हो गयी है। इसी देश के गोवा राज्य के लिए ये आंकड़ा 1,75,000 रु. हैं जबकि बिहार के लिए 20,00 रू0।

विकास का दूसरा स्तम्भ देखते हैं । केरल में 1000 जीवित पैदा हुए बच्चों में से 11 बच्चे एक वर्ष की आयु तक पहुँचने से पहले ही मर जाते हैं लेकिन पंजाब में यह अनुपात 49 है जो केरल की तुलना में 4 गुना है। दूसरी ओर पंजाब की प्रतिव्यक्ति आय केरल से कहीं ज्यादा है। बिहार के आधे से अधिक बच्चे स्कूल भी नहीं पहुँच पाते वहीं केरल राज्य में प्रति किलोमीटर की दूरी पर एक प्राथमिक स्कूल अवश्य है जिसकी वजह से वहाँ की 94 प्रतिशत जनता शिक्षित है।

यह आवश्यक नहीं है की जेब में रखा रुपया वे सब वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सके, जिनकी आपको एक बेहतर जीवन के लिए आवश्यकता हो सकती है। उदाहरण के लिए समान्यतया आपका पैसा आपके लिए प्रदूषण मुक्त वातावरण नहीं खरीद सकता या बिना मिलावट की दवाएं आपको नहीं दिला सकता जब तक आप ऐसे समुदाय में ही जाकर नहीं रहने लग जाते जहां ये सुविधाएं पहले से उपलब्ध हैं। पैसा आपको संक्रामक बीमारियों से भी नहीं बचा सकता, जब तक आपका पूरा समुदाय ही इनसे बचाव के लिये कदम नहीं उठाता।

वास्तव में जीवन में बहुत सी महत्वपूर्ण चीजों के लिए सबसे अच्छा और सस्ता तरीका इन वस्तुओं और सेवाओं को सामूहिक रूप से उपलब्ध कराना है। जरासोचिए, किसी स्थानीय इलाके के लिए सामूहिक सुरक्षा प्रदान करना अधिक सस्ता है अथवा हर घर के लिए अलग-अलग सुरक्षा गार्ड रखना ?

केरल में शिशु मृत्यु दर कम है क्योंकि वहाँ स्वास्थ्य और शिक्षा की मौलिक सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। इसी प्रकार कुछ राज्यों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली ठीक प्रकार से कार्य करती है। ऐसे राज्यों में लोगों के स्वास्थ्य और पोषण स्तर निश्चित रूप से बेहतर होने की संभावना है।

उदाहरण के लिए तमिलनाडू के ग्रामीण क्षेत्रों के 75% लोग राशन की दुकानों का प्रयोग करते हैं, जबकि झारखंड में केवल 8 प्रतिशत।

अच्छे स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाओं की उपलब्धता केवल सरकार द्वारा इन सुविधाओं के लिये किये गये व्यापार पर निर्भर नहीं करती अपितु इस बात पर भी निर्भर करती है कि आम इंसान इन सुविधायों का लाभ उठा पा रहा है या नहीं। आवश्यकता है अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता की। यद्यपि हमारे देश के लिए बनाई गयी किसी भी विकास योजना का लाभ हम तक पहुँचाना सरकार की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। परन्तु यदि मनुष्य व्यक्तिगत स्तर पर आय, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में प्रगति कर सके तो देश का विकास अपने आप हो जायेगा।

श्वाति तिवारी, छात्रा

Designed by
Sarthak Singh Gaur,
DPS.K

सभ्यता

जब हम असभ्य थे
अंधेरी गुफाओं में रहते थे
कपड़े नहीं पहनते थे
हमारा 'चेतनाबोध'
कितना परिपक्व था!
हम पशु–पक्षियों की भाषा भी समझ लेते थे
आज हम सभ्य हैं
'Neon Light' में रहते हैं
लेकिन...
कितने बौने और कदहीन हो गए हैं
कि
आदमी होकर आदमी की भाषा नहीं समझ पाते।

कुछ

अक्सर ऐसा लगता है
कि मेरी जिन्दगी में
कुछ टूट कर बिखर सा गया है।
उस कुछ को बलात् अपनी मुट्ठी में
बन्द करने की भरसक कोशिश करता हूँ
पर हाथ में आते हैं
अवशेष
अतीत का इतिहास बन चुके
कुछ जले हुए पन्नों के।
मुट्ठी से सरकती रेत की भाँति अनियंत्रित
टूट कर बिखरते इस कुछ को
मैं यों ही ठगा सा देखता रह जाता हूँ
समझ नहीं पाता हूँ मैं,
कि ये
सपने में यथार्थ है या यथार्थ में सपना।
सपने और यथार्थ के बीच की
ये अनसुलझी गुत्थी
और उलझती जाती है।
क्योंकि,
दिमाग इसे यथार्थ कहता है
पर ये मन,
उस कुछ को जोड़ने की कोशिश में,
यों ही सपने बुनता हुआ,
जाने कहाँ,
दर दर भटकता फिरता है।

अंकुश शर्मा छात्र

हिन्दी भाषा यथार्थ में कितनी?

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर, में विगत कुछ समय पूर्व हिन्दी पखवाड़ा मनाया गया। संस्थान का राजभाषा प्रकोष्ठ प्रति वर्ष समय–समय पर संस्थान में हिन्दी के उपयोग को प्रोत्साहित करने के आशय से इसी प्रकार के विभिन्न आयोजन करता रहता है। इनमें से कतिपय आयोजन निस्संदेह भारत सरकार के इस दिशा में जारी निर्देशों के तहत सम्पादित किये जाते हैं। तथापि, इससे परे यह भी सत्य है कि संस्थान के राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा अपनी पहल पर संस्थान के सामान्य एवं नैत्यिक लेखन में हिन्दी का उपयोग बढ़ाये जाने हेतु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप सें अनवरत प्रयास किये गये हैं जो सचमुच श्लाघनीय हैं। फिर भी सरकार के तमाम विभागों में समग्र रूप से अंग्रेजी भाषा की तुलना में यदि हिन्दी के उपयोग और व्यवहार का एक मोटा किन्तु निष्पक्ष आकलन किया जाय तो परिणाम में दोनों भाषाओं के अनुपातिक प्रतिशत की जो स्थिति हमारे समक्ष उभरती है, वह किसी भाँति भी हमारे मानस में उत्साह का संचार नहीं करती है।

तो क्या यह विडम्बना पूर्ण स्थिति नहीं है? वह भी इस तथ्य की पृष्ठभूमि में कि सरकार हिन्दी के उन्नयन तथा उसके अधिकाधिक उपयोग हेतु हम सबको जब–तब चेताती रहती है। फिर हम इस स्थिति को किस प्रकार से समझें? क्या विद्यमान स्थिति सचमुच त्रासद नहीं है? हिन्दी भारतीय संविधान द्वारा घोषित राजभाषा होने के साथ–साथ जन–सामान्य की आम भाषा भी है। फिर भी सामान्य शासकीय कार्य में इसके उपयोग का स्थान यथार्थ में गौण ही है। कभी हम गर्व से कहते थे कि हिन्दी हमारी अपनी भाषा है, मातृभाषा है, राष्ट्रभाषा है, गौरव है। हमारी यह समझ भी सत्य थी कि किसी की सहज ,स्वाभाविक, श्रेष्ठतम् और प्रवाहमयी अभिव्यक्ति उसकी मातृभाषा में ही हो सकती है, किन्तु आज का परिदृश्य हमें अपनी भाषा पर अपने इस विश्वास के प्रति शंकालु होने को विवश करता है। शासकीय कार्य–व्यवहार में अंग्रेजी भाषा के सापेक्ष इसके प्रयोग की स्थिति वस्तुत: हिन्दी भाषा को एक प्रादेशिक भाषा होने के तथ्य की ओर ही इंगित करती है जो अकारण नहीं है प्रत्युत, यदि वह इस स्थिति को प्राप्त हुई है तो उसमें हमारा सबका ही प्रत्यक्ष योगदान है जो भारत के गणतंत्र बनने के उपरान्त लगतार नकारात्मक ही रहा है।

किसी समय लार्ड मैकाले ने ब्रिटिश शासनकाल में जब भारत में अंग्रेजी भाषा को सुस्थापित करने का निर्णय लिया था तो उसमें उसका एक अन्तर्निहित उद्देश्य था। वह भली–भांति रूप से जानता था कि किसी देश की संस्कृति के मूल में उसकी मातृभाषा होती है। उसका विश्वास था कि किसी देश की भाषा नष्ट होने पर उसकी संस्कृति स्वत: नष्ट हो जाती है और कदाचित ऐसा ही हुआ क्योंकि भारतीय संस्कृति की जड़े सदैव से बड़ी गहरी थीं और सम्भवतरू अपने लम्बे शुरूआती शासनकाल में अंग्रेजों ने

इस संदर्भ में अपने को सदैव असहाय पाया था। मैकाले के उपर्युक्त विश्वास के सफलीभूत होने के आज हम जीते–जागते प्रमाण हैं।

इस प्रकार यदि मैकाले की सोच पर ब्रिटेन द्वारा धीरे–धीरे किन्तु दृढ़ निश्चय से एक नीति के तहत अंग्रेजी भाषा को संपूर्ण भारत में बढ़ावा देते हुये स्थापित किया गया जिसके फलस्वरूप सहस्त्राब्दियों से स्थापित हमारी परम्परागत भाषा और संस्कृति आज इस सीमा तक प्रभावित हो चुकी है कि हम इनके प्रति जब–तब शंकाओं से घिर जाते है जब कि इसके विपरीत अपनी भाषा एवं संस्कृत को जीवन्त बनाये रखने के लिये हमारे द्वारा बस अपनी भाषा का संरक्षण एंव पोषण किया जाना ही अपेक्षित है। इस संदर्भ में यह तथ्य भी विचारणीय है कि दुनिया के चीन व तमाम यूरोपियन देश केवल अपनी भाषाओं का अवलम्ब लेकर आज विज्ञान व तकनीक में अंग्रेजी भाषी देशों से कहीं आगे निकल गये हैं किन्तु इसके विपरीत दु:खद रूप से हमने अपनी ही मूल भाषा को विस्मृत कर दिया है। अत: हमें अब सोचना है कि इस संदर्भ में हिन्दी के प्रति हमारी क्या अपेक्षायें हैं साथ ही साथ हमसे हिन्दी की क्या अपेक्षायें हैं? हम इस सत्य को भलीभांति जानते हैं? कि हम हिन्दी में कार्य कर सकते हैं और उसके प्रयोग में भली–भाँति सक्षम हैं किन्तु इसके बाद भी हम कदाचित अपनी सुप्त मनोदशा के अधीन हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी में स्वभावत: काम करने लगते हैं। हमारे पास यह विचार करने का पर्याप्त कारण है कि हम अपने बच्चों को आंग्ल–भाषी स्कूलों में पढ़ाने को प्राथमिकता क्यों देते हैं और सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोग जो हिन्दी को पोषित करने में सर्वाधिक सकारात्मक योगदान दे सकते हैं, क्यों वर्तमान परिवेश में इससे विमुख होकर अंग्रेजी भाषा को ही अनवरत प्रश्रय दे रहे हैं तथा हिन्दी के प्रति हमारा यह व्यवहार इन अनेक बिन्दुओं पर क्या नकारात्मक नहीं है और क्या इन्हीं अनेक कारकों से हिन्दी का क्रमश: ह्रास नहीं हुआ है?

इस क्रम में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हिन्दी भाषा की स्थिति पर हमारा प्रासंगिक विचार राष्ट्रीय संदर्भ से है न कि क्षेत्रीय दृष्टिकोण से। हम सब

जानते हैं कि हमारा देश बहुभाषी देश हैं, जहाँ अनेक क्षेत्रीय भाषायें सदियों से आम उपयोग में हैं लेकिन जहां तक हिन्दी का प्रश्न है, वह मुख्यत: भारत के उत्तर, मध्य व पश्चिमी राज्यों में ही केन्द्रस्थ है। दक्षिण के भी एकाधिक राज्यों में आम भाषा न होते हुये भी लोगों में उसकी समझ और स्वीकार्यता है जबकि अन्यान्य प्रदेशों में क्षेत्रीय भाषाओं का ही वर्चस्व है। अत: क्षेत्रीय भाषाओं के सम्पोषण के साथ–साथ यदि हमें एक राष्ट्र की अवधारणा को सम्बल देना है, तो उसके लिये एक राष्ट्रीय भाषा, जो समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोये रखने का स्वयं में एक महत्वपूर्ण स्तम्भ एंव कारक है, की अवहेलना हम कैसे कर सकते हैं? निश्चय ही यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सुस्थापित किया जाना है तो तदर्थ देश व समाज की प्रत्येक इकाई का वैयक्तिक स्तर पर योगदान अभीष्ट है जैसे: व्यक्ति, संस्था, समाज के नाना अंग और तदुपरान्त राज्य एवं उनके साथ कठोर संकल्प, दृढ़ इच्छाशक्ति, समर्पण, एक सुनिश्चित और सुविचारित कार्ययोजना तथा राजधर्म। राज्य एवं राजधर्म से हमारा आशय यहां देश के शासनतंत्र और उसके व्यवहार से है क्योंकि भारतीय समाज अपने मूल चरित्र के अनुरूप नीचे से नहीं वरन, शीर्ष स्तर की प्रेरणा से अनुगमित और अनुप्राणित होता है।

कहने का तात्पर्य यह हैं कि हिन्दी के अभिवांछित उद्देश्य की प्रतिपूर्ति हेतु शासन का प्रयास ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जैसा कि हम लार्ड मैकाले तथा उसकी सोच पर ब्रिटिश शासन द्वारा कृत क्रियान्वयन के उदाहरण से समझ सकते हैं। निस्संदेह, किसी उद्देश्यपूर्ण लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में स्वाभाविक रूप से बाधायें आती हैं किन्तु उसकी प्रतिपूर्ति प्रासंगिक संदर्भ में उपर्युक्त माध्यमों से निश्चयात्मक रूप से संभव हो सकती हैं। हम यह तो कर ही सकते हैं कि स्वयं की इकाई स्तर पर, जब तक कि अन्यथा वांछनीय न हो, हम हिन्दी में ही कार्य करें, बात करें और दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिये प्रोत्साहित करें, प्रेरित करें। लेकिन जहाँ तक हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर पर सर्व स्वीकार्य, सबके द्वारा अंगीकृत भाषा बनाये जाने का प्रश्न है, तो हमें उसके लिये निश्चय ही समग्र एंव समवेत रूप से सशक्त व दृढ़ प्रयास करने होगें क्योंकि एक राष्ट्रभाषा ही हमें सही अर्थों में एक राष्ट्र बनने की ओर उन्मुख कर सकती है और तब इस दिशा में जिनका, जैसा, जिन सीमाओं तक योगदान होगा और जिन्होनें अपने संकल्प को परिणति प्रदान करने का प्रयास किया होगा, वे असंदिग्ध रूप से अनुभूत कर सकेंगे कि राष्ट्रहित के पोषण हेतु उन्होनें वस्तुत: अपने राष्ट्रधर्म का निर्वाह किया है किन्तु इस सम्पूर्ण संदर्भ में एक स्थायी प्रश्नचिहन राजधर्म के विषय को लेकर रह जाता है क्योंकि राजधर्म का हिन्दी के प्रति व्यवहार मात्र औपचारिकताओं का नहीं वरन् वस्तुनिष्ठ होना चाहिये। और तभी हिन्दी के प्रति हमारी कुल अपेक्षायें मूर्त हो सकेंगी।

श्री वी पी गुप्ता
श्रम सलाहाकार

जीवन का भूषण चरित्र है

चरित्र स्वत ही ऊँचा नहीं उठता। इसके लिए दृढ़ इच्छाशक्ति, सतत् प्रयत्न, ऊँचा आत्मबल, दृढ़ संकल्प, सतसंगति, आत्मचिंतन, स्वाध्याय आदि गुण अपेक्षित हैं। कुसंगति चरित्र का हनन करती है–

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यौ परोस।।

और

कहु रहीम कैसे निभै बेर केर को संग ।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग।।

चरित्र निर्मल और पवित्र बनाने में सतसंगति का प्रभाव बेमिसाल है। सतसंगति ही पारस पत्थर है, जिसके स्पर्श मात्र से लोहा भी सोना बन जाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ से युक्त मनुष्य चाहे कितना ही उच्च पद प्राप्त कल ले, वह चरित्रनिष्ठ व्यक्तियों की कोटि में नहीं आएगा। इन दुर्गुणों से युक्त व्यक्ति के द्वारा किसी भी क्षण अनिष्ट कार्य संभाव्य है। बस, ऐसा व्यक्ति उसी क्षण मूर्खों की श्रेणी में आ जाएगा–

काम क्रोध मद लोभ की जब लगि मन में खान।
का पंडित का मूरखौ दोऊ एक समान।।

हिंदी लेखन में प्रयुक्त विरामादि चिह्न

वर्ण जब शब्दों की यात्रा करते हुए वाक्य के मुकाम पर पहुँचते हैं तो अर्थ–संप्रेषण की दृष्टि से कई जगह विराम की आवश्यकता पड़ सकती है; इसी के लिए हैं विराम चिह्न। वर्तमान में पूर्ण विराम (।) के अलावा हिंदी भाषा में कई और तरह के विराम चिह्नों का भी खूब प्रयोग हो रहा है। यहाँ विराम और विराम से इतर दोनों ही प्रकार के चिह्नों का विवेचन उदाहरण सहित प्रस्तुत किया जा रहा है–

पूर्ण विराम (।) Full Stop

•वाक्य के अंत होने की सूचना। जैसे–श्याम पढ़ता है।

•अप्रत्यक्ष प्रश्न के अंत में। जैसे– आपने बताया नहीं कि आप कहाँ जा रहे हैं।

प्रश्न चिह्न (?) Question Mark

•प्रश्नवाचक वाक्यों के अंत में। जैसे– वह कहाँ रहता है ?

•यदि एक वाक्य में कई प्रश्नवाचक उपवाक्य हों तो पूरे वाक्य के समाप्त होने पर सबसे अंत में। जैसे– मैं क्या करता हूँ, मैं कहाँ–कहाँ जाता हूँ, कहाँ क्या खाता हूँ, यह सब जानने के आप इच्छुक क्यों हैं?

•प्रश्नवाचक मुहावरे के अंत में। जैसे– जंगल में मोर नाचा किसने देखा?

अपूर्ण विराम/उपविराम (:) Colon

•सामान्यत: इसका प्रयोग आगे आने वाली सूची आदि के पूर्व किया जाता है। जैसे– महत्वाकांक्षी के तीन शत्रु हैं : आलस्य, हीन–भावना एवं पराश्रय।

•संख्याओं में अनुपात प्रदर्शित करने के लिए। जैसे– 1:2, 5:6

•स्थान, समय की सूचना के लिए । जैसे– स्थान : सभा कक्ष, समय: चार बजे

अर्धविराम (;) Semi Colon

•छोटे–छोटे दो से अधिक वाक्यों की श्रृंखला में, जो एक ही वाक्य पर आश्रित हों। जैसे–विद्या विनय से आती है ; विनय से पात्रता ; पात्रता से धन ; धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है।

•समुच्चयबोधकों से बने उपवाक्यों को पृथक् करने के लिए। जैसे– आपने उसकी निंदा की; अतएव वह आपका दुश्मन ही बनेगा।

•अंको का विवरण देने में। जैसे– भारत–210; पाकिस्तान–188; जापान–205

अल्पविराम (,) Comma

•वाक्य, वाक्यांश में तीन या उससे अधिक शब्दों को अलग करने के लिए। जैसे– दिल्ली, मुबंई, कोलकाता और चेन्नै भारत के बड़े नगर हैं।

•वाक्य के मध्य में किसी क्षिप्त वाक्यांश अथवा उपवाक्य को अलग दिखाने के लिए। जैसे– गणित का पाठ्यक्रम बदल जाने से, मैं समझता हूँ, इस वर्ष हायर सैकेंडरी का परीक्षाफल प्रभावित होगा।

•सकारात्मक और नकारात्मक शब्दों में 'हाँ' या 'नहीं' के बाद। जैसे– हाँ, मैं तो जरूर आऊँगा। नहीं, मैं नहीं आऊँगा।

•उद्धरण से पूर्व। जैसे– हरिमोहन ने कहा, 'मैं इस बार चुनाव में खड़ा हो रहा हूँ।"

•समानाधिकरण शब्दपदबंध के मध्य में इसका प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। जैसे– मैं, राहुल शर्मा, यह घोषणा करता हूँ कि

•तारीख के साथ माह का नाम लिखने के बाद। जैसे– 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ।

•पत्र में संबोधन के बाद। जैसे– महोदय,

ऊर्ध्व अल्पविराम (') Apostrophe

•अंग्रेजी में यह चिह्न संबंधकारक का सूचक है, पर हिंदी में तो यह चिह्न मात्र अंक लोप का ही सूचक है। जैसे– सन् '47 से सन्'50 तक = सन् 1947 से सन् 1950 तक

निर्देशक चिह्न (--) Dash

•निर्देशक चिह्न (–) का आकार योजक चिन्ह (-) से अधिक लंबा होता है। इसको रेखिका भी कहते हैं।

•किसी व्यक्ति के वाक्य को उदधृत करने से पूर्व। अध्यापक – भारत के प्रथम राष्ट्रपति कौन थे?

•कहना, लिखना, बोलना, बताना आदि क्रियाओं के बाद। कमला ने कहा – मैं कल चली जाऊँगी।

•'निम्नलिखित' आदि शब्दों के साथ। नाम निम्नलिखित हैं – मोहन, सोहन, राम
•किसी अवतरण के बाद और उसके लेखक/ वक्ता से पहले। स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है – तिलक
•संख्याओं, सन् या दो नामों के बीच इसका प्रयोग किया जाता है, तब उसका अर्थ होता है – 'अमुक' से 'अमुक' तक
•पृष्ठ 40 – 55 यानी पृष्ठ 40 से 55 तक
•'कि' के स्थान पर। होरी ने कहा – तो तू क्या समझती है, मैं बूढ़ा हो गया?

विवरण चिह्न (:–) Colon Dash

•यह चिह्न उपविराम और निर्देशक चिह्न का मिश्रित रूप है। अत: इन दोंनो का अलग-अलग चिह्नों के स्थान पर वैकल्पिक रूप में इस चिह्न का प्रयोग भी प्राय: किया जाता है। जैसे- किसी एक कवि का जीवन परिचय लिखिए:– 1.तुलसीदास 2.कबीरदास 3.सेनापति

उद्धरण चिह्न (" ") Inverted Comma

•किसी का कहा वाक्य ज्यों-का-ज्यों उदधृत करते समय, नाटकों में संवाद के साथ तथा किसी सिद्धांत वाक्य अथवा लोकोक्ति के साथ इस चिह्न के प्रयोग की प्रथा है। जैसे- सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था, "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।"
•यवन – क्यों, "गांधार नरेश ने तुम्हें क्या आज्ञा दी है?"
"मा फलेषु कदाचन"

शब्द चिह्न (' ') Single Inverted Comma

•किसा पुस्तक, व्यक्ति आदि के नाम को एक कॉमा/अल्पविराम जैसे उद्धरण चिह्न में रखा जाता है। जैसे- 'बालभारती' बच्चों की पत्रिका है।
•किसी शब्द/पद को पृथक् रूप से उभारने के लिए। जैसे- "वह अच्छा लड़का है।" इस वाक्य में 'अच्छा' शब्द 'लड़के' की विशेषता बता रहा है।
•व्याख्या के लिए। जैसे- इस भाषा का नाम ' संस्कृत ' पड़ा, जिसका शाब्दिक अर्थ है ' सुधरा हुआ '।

कोष्ठक [{ ( ) }, Brackets

•छोटे कोष्ठक ( ) के भीतर मुख्यत: उस सामग्री को रखते हैं, जो मुख्य वाक्य का अंग होते हुए भी पृथक् की जा सकती है। जैसे- संज्ञा के तीन मुख्य भेदों (व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, भाववाचक) का विवेचन किया जा रहा है।
•क्रमसूचक अंको या अक्षरों के साथ। जैसे- (1) (3) (ख) (ग)
•शब्दों या अंकों में लिखी संख्या को लिखने के लिए भी कोष्ठक का प्रयोग किया जाता है। जैसे- पाँच सौ रुपए (रु.500/-)
•संदर्भ या निर्देश के रूप में प्रस्तुत सामग्री। जैसे- प्राचीन भारत में राजा निरंकुश नहीं होता था। (देखिए: अध्याय पाँच)
•किसी भी सामग्री के अंत में नोट/टिप्पणी कोष्ठक में दी जाती है। जैसे-

विज्ञापन
आवश्यकता है
सूचना

(नोट: केवल कानपुर निवासी ही आवेदन करें)
•छोटे कोष्ठक के अलावा सर्पाकार कोष्ठक { } अथवा बड़ा कोष्ठक [ ] भी होता है जब किसी कारणवश दो या तीन प्रकार की टिप्पणियाँ सूचनाएँ देनी हों तो छोटा कोष्ठक सर्पाकार कोष्ठक में समा जाता है, और ये दोंनो कोष्ठक मिलकर फिर बड़े कोष्ठक में समाहित हो जाते हैं।

लोप चिह्न (...) Elimination Sign

•लोप चिह्न मुख्य रूप से तीन छोटे-छोटे बिंदुओं से प्रदर्शित किया जाता है। जब किसी शब्द को जान बूझकर प्रयोग न करना हो या तत्काल याद न आ रहा हो तो लोप चिह्न प्रयुक्त होता है और जब बात छूटी हुई हो तो तीन-तीन बिंदुओं को कई बार लगाया जाता है। जैसे- यदि आप ... चाहें ... ... तो

संक्षेपसूचक चिह्न (०) (.) Abbreviation Sign

•संक्षिप्ति बिंदु (.) का प्रयोग शून्य (०) की भाँति भी होता है। जैसे- एम.ए., एम०ए०, से.मी. , से०मी०

योजक चिह्न (-) Hyphen

•द्वंद समास के बीच में। जैसे- माता-पिता, भाई-बहिन आदि।
•दो समानार्थी शब्दों के पुनरुक्ति के बीच में। जैसे- घर-घर, रोम-रोम आदि।
•दो परस्पर विलोम शब्दों के बीच में। जैसे- रात-दिन, उठना-बैठना आदि।
•साम्य सूचक सा, से, सी से पूर्व में। जैसे- छोटा-सा, मुझ-सा आदि।
•तत्पुरुष समास में समस्तपद से भ्रांति की संभावना होने पर। जैसे- भू-तत्व ।

संग्रह स्रोत–
देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण (केन्द्रीय हिंदी निदेशालय)

हिन्दी मेरी मातृभाषा

आज कल देखता हूँ कि आम बोलचाल में भी लोग अंग्रेजी शब्दों का आधिक्य रखते हैं। सरकारी नीतियों में पहले से ही उपेक्षित हिंदी की दुर्दशा का ये एक नया दौर चल रहा है, जहाँ अंग्रेजी का घटिया प्रयोग भी हिंदी की अपेक्षा अधिक विद्वता का प्रमाण माना जाता है। मैं स्वयं इस मत से सहमत हूँ कि वैश्वीकरण के समय में अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संवाद की भाषा बन गई है और देश के पेशेवरों के लिए उसे सीखना बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। लेकिन हमारे देश में कुल जनसंख्या का तमाम भाग आज भी निम्न और निम्न मध्यम वर्ग के अंतर्गत आता है जहाँ इस भाषा का माहौल लगभग शून्य के बराबर है वैसे इस बात को मैं आगे बेहतर स्पष्ट करने का प्रयत्न करूँगा। मेरे मंतव्य की प्रस्तावना केवल इतनी है कि आज हिंदी को अपनी वास्तविक स्थिति पर संतुष्टि होनी चाहिए या नहीं? और उससे भी कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है कि हिंदी की वास्तविक स्थिति है क्या? क्या उसे उसके अधिकारों से वंचित रखा गया है? और पोषक हिंदुस्तानी संस्कृति विलुप्ति के मार्ग पर हैं?

कई वर्षों तक हम अंग्रेजों के अधीन शासित रहे। इस प्रकार के वातावरण ने एक बड़ा घातक काम किया और इसने भारतीयों की मानसिकता को पंगु कर दिया। वैसे भी तंत्र के उच्च पदों पर अंग्रेजी में दक्ष व्यक्ति की नियुक्ति अधिक होती थी, जिससे स्वतंत्रता के पश्चात् ये कठिन काम था कि तंत्र से अंग्रेजी की सफाई की जाए। खैर, तकनीकी क्षेत्र में बुरी तरह पिछड़ने के कारण उस समय उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हमें विदेशी ज्ञान पर आधारित रहना पड़ा। इस मजबूरी की दशा ने उच्च शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को आवश्यक कर दिया। वैज्ञानिक शिक्षा की आड़ में साहित्य, कला, शिल्प आदि प्रमुख क्षेत्र कब दुर्दशाग्रस्त हो गए–कदाचित् इसका ध्यान नहीं रह पाया। यद्यपि भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में आंदोलनकारियों के लिए तीन प्रमुख हथियार थे, तथापि स्वतंत्रता पश्चात् ये उतने ही ठुलमुल रवैये के शिकार हुए। इनमें सबसे प्रमुख रहे हिंदी साहित्य और खादी ग्रामोद्योग तो आज पूर्वजों की निशानियों के रूप में संरक्षित किए जा रहे हैं।

ये सभी मानते हैं कि हिंदी को रोजगार की भाषा बनने से वंचित रखा गया। उनमें से दो सर्वाधिक संभावित करणों का मैंने उल्लेख कर दिया है।

आज भी तमाम लोग अपने अभिभाव्य का दाखिला पब्लिक और कॉन्वेंट स्कूलों में ये धारणा रखकर कराते हैं कि उसे भविष्य में रोजगार के बेहतर अवसर मिलेंगे। साधारण भाषा में कहें तो कम से कम क्लर्क वगैरह की नौकरी मिलना आसान हो जाएगा। वैसे अधपकी पढ़ाई पढ़कर बाबूगिरी से अधिक वे कुछ कर भी नहीं सकेंगे। मातृभाषा आधारित शिक्षा सम्पूर्ण विश्व में गंभीर विमर्श का विषय बनी हुई है। शिक्षाशास्त्री कैरोल बेसन तो इसके महत्व ही नहीं आवश्यकता की बात करते हैं। बेशक अंग्रेजी माध्यम में पढ़े हुए तमाम लोग शीर्ष पदों पर मिलते हैं, लेकिन ध्यान रखने की बात है कि इसमें कई अन्य परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उदाहरण स्वरूप घर पर परिवेश में अंग्रेजी के प्रति खुलापन, दोस्तों रिश्तेदारों के साथ अंग्रेजी संवाद की अधिकता। उच्च मध्यम वर्ग के निजी फायदों से हटकर यदि हिंदुस्तान के भौतिक मानचित्र पर ध्यान केंद्रित करें और अंग्रेजी शिक्षा के असर का व्यापक आकलन करें तो सिवाय बदहाली और क्लर्कवादी तंग सोच के कुछ नहीं मिलता।

तमाम अध्ययन ये पुष्टि करते हैं कि अंग्रेजी माध्यम के कारण अधिकांश आबादी में शिक्षा की गुणवत्ता गिरी है और भाषाई कुशलता जो समाप्त हुई सो अलग। कई लोग कह सकते हैं कि अंग्रेजी में अकुशलता भी एक कमी है जिसे सुधारा जाना चाहिए लेकिन बात ये है कि वे जिन्हें अंग्रेजी शिक्षा का वातावरण नहीं मिला, वे अवसरों में कमी देखकर अपने हिंदी भाषी होने पर ही ठगा हुआ महसूस करते हैं। इसलिए भारत देश में बहुसंख्य हिंदी भाषी आबादी की रोजगार संबंधी बदहाली देखकर उनके सुधार के कुछ ऐसे कदम उठाए जाने चाहिए जो उन्हें परायी भाषा की अकुशलता के कारण उत्पन्न हुई असफलता से मुक्ति दिलाने में समर्थ हों। सरकार को ऐसी नीतियों को तुरंत लागू कराना होगा जो हिंदी भाषियों के लिए समांतर रोजगार अवसर उत्पन्न करें। हिंदी की बदहाली साहित्यकारों के काले अक्षरों तक सीमित रह गई है। इसे भ्रष्टाचार, गरीबी, पर्यावरण सुरक्षा जैसे भारी भरकम और सार्वकालिक मुद्दों ने इस तरह ढ़क दिया है कि सियासतदानों और मीडिया को इसकी खबर भी न मिल सकी। आपको लग सकता है कि मैं भावनाओं में आकर ऐसा कह रहा हूँ लेकिन बात जब मातृभाषा और उसके अधिकार की होगी तो कोई ये आशा कैसे कर सकता है कि मैं भावशून्य रहते हुए मातृभाषा हिंदी को मात्र एक भाषा के रूप में स्वीकार कर लूंगा।

कभी उर्दूमिश्रित खालिस हिंदी शब्दों से सिनेमा के गीत गुलजार हुआ करते थे। उन गीतों में कितनी ही रूमानियत क्यों न उड़ेल दी गई हो, लेकिन वो भद्दी सोच नहीं पैदा करते थे। आज के गीतकार (कुछ एक प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों को छोड़कर) बाजारवाद से बुरी तरह घिरे हुए हैं। उनमें से अधिकांश की मानसिकता ही बाजारू हो चुकी है और दूसरे फिल्मों का मुख्य ध्येय पैसे कमाना बन चुका है, जिसके कारण गीतों में फूहड़ता का सम्मिलन अछूत नहीं रहा।

संस्थान के नए निदेशक प्रो. इन्द्रनील मन्ना जी का मैंनें कुछ दिन पूर्व साक्षात्कार किया था। उसमें भी उन्होंने ये बात कही थी कि हिंदी सिनेमा भारतीय एकता को आज के दौर में भी अक्षुण्ण बनाए हुए है क्योंकि इसे देश के हर हिस्से में लोग देखते हैं।

सिनेमा के अलावा हिंदी को और जहाँ आश्रय मिल पाता है, वो है राजनीति। यदि हिंदी कहीं सम्मानित रूप से विराजमान है तो वो हिंदी भाषी क्षेत्रों के राजनेताओं के मुखारविंद ही हैं। राष्ट्रीय स्तर पर संवाद और संचार के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा बनकर हिंदी हमेशा से उभरी है। इसका छोटा उदाहरण कुछ दिनों पहले ही संसद में एफडीआई मसले पर हुई चर्चा में देखने को मिला जहाँ आम जनता ने अपने प्रतिनिधियों को हिंदी में मुद्दे पर विचार रखते हुए सुना और बेहतर तरीके से समझा। मैंने संक्षेप में हिंदी की स्थिति और नेपथ्य में छिपे इसके कुछ कारणों पर अपनी बात की है। निचोड़ के रूप में यही कहना उचित है कि हिंदी भाषा के परिष्कार के लिए यहाँ सुझाए गए और अन्य कई उपयुक्त कदमों को क्रियान्वित किए जाने की आवश्यकता है। वैसे अंत में ये भी कहना मेरा कर्तव्य है कि साहित्यकारों को भी हिंदी दुर्दशा सुधारने के लिए अपने स्तर पर बड़े कदम उठाने की आवश्यकता है। ये कहने में कोई गुरेज़ नहीं है कि हिंदी ने राष्ट्रनिर्माण में जितना बड़ा योगदान किया है, हमने उतना ही हिंदी को पर्दे के पीछे ढ़केल दिया है। आज हिंदी को नेपथ्य से आगे लाने की आवश्यकता है।

निशांत सिंह, छात्र

हिंदी साहित्य सभा–नयी मंजिले नयी उड़ान

अन्तस् की एक नयी कड़ी फिर से आप सभी के सामने है. राजभाषा प्रकोष्ठ के साथ मिल कर हिंदी साहित्य सभा को बहुत कुछ सीखने को मिला है और इसके लिए हमें तहे दिल से इनका आभार व्यक्त करते हैं। जैसा की आप जानते हैं, संस्थान में हिंदी साहित्य सभा का अस्तित्व काफी पुराना है परन्तु पिछले कुछ वर्षों से इस सभा ने कुछ नई सीमाएं निर्धारित की हैं, जिन्हें हम अग्रिम वर्षों में और भी विकसित होते देखना चाहते हैं. हमारी सभा ना सिर्फ हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए अग्रसर है अपितु हम इस बात का भी ध्यान रखते हैं की इन कोशिशों में हिंदी तथा अंग्रेजी के बीच आये अंतर को हम कम कर सकें।

हमारी सभा की कुछ कोशिशों का विवरण जब हमसे माँगा गया तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान हमारी हिंदी कक्षाओं की ओर गया. इन कक्षाओं में अहिन्दीभाषी जनता को हम नि:शुल्क हिंदी की शिक्षा देते हैं.इन कक्षाओं में दक्षिण तथा उत्तर–पूर्वी प्रांत के लोगों के साथ साथ जर्मनी तथा फ्रांस से आये छात्रों की भी संख्या देखी गयी है. ये कक्षाएं हमारी सभा के कर्मठ सचिवों द्वारा ली जाती है. कक्षा के अंत में छात्रों द्वारा एक फीडबैक फॉर्म भी भरवाया जाता है, जिससे हमें हमारे पाठन शैली के बारे में उनकी राय मिलती रहती है तथा उनमें पायी जाने वाली कमियों को उचित रूप से सुधारा भी जाता है।

इन्हीं कक्षाओं के सामान परामर्शदात्री–सेवा (कोउन्सेल्लिंग सर्विस) के साथ मिलकर हम प्रथम वर्ष के छात्रों के लिए भी कक्षाएं चलाते हैं जिन्हें यहाँ के नए पठन–पाठन शैली में घुलने–मिलने में तकलीफ होती है. परामर्शदात्री–सेवा द्वारा इन कक्षाओं को सम्मानित भी किया जाता है.द्वितीय वर्ष में पढ़ रहे हिंदी साहित्य सभा के सचिव इन कक्षाओं को चलाते हैं. और प्रत्येक कक्षा के लिए कई घंटे पहले खुद पढ़ते हैं तथा नोट्स बनाकर जाते हैं। इनकी यह मेहनत वाकई प्रशंषा के योग्य है।

इन कक्षाओं के अलावा ''अंतराग्नि'', ''गेलेक्सी'' तथा ''मस्ती'' वाले सप्ताहों में विभिन्न प्रकार के प्रतियोगिताएं अयोजित की जाती हैं. इस वर्ष के शुरुवात में प्रथम वर्ष के छात्रों के लिए आयोजित की गयी ''मस्ती'' सप्ताह के अंतर्गत ''मायाजाल'' प्रतियोगिता में अभूतपूर्व भीड़ देखी गयी. लगभग 850 की संख्या में से 450 के करीब लोगों का आना इस बात का प्रमाण है की ''मायाजाल'' बहुत सफल हुई है. लोगों की संतुष्टी तथा विजेताओं का जोश देखकर हमें अत्यंत प्रसन्नता हुई."मायाजाल" के अतरिक्त सप्तरंग, आमने–सामने, बस एक पल, मंथन, दृष्टिकोण, काव्यांजलि, आदि जैसे और भी कई मनोरंजक प्रतियोगिताएं हम समय–समय पर करवाते रहते हैं. सेमेस्टर की शुरुवात में ''रचनात्मक–लेखन कार्यशाला'' का भी आयोजन भी करवाया गया जिसमे लोगों को लेखन–शैली से जुड़े कई तथ्यों को सीखने का मौका भी मिला. इस कार्यशाला के लिए हमने कानपुर के ही प्रसिद्ध हिंदी अध्यापक डॉ आर. के. शुक्ल जी को निमंत्रित किया था. उनके नम्र स्वाभाव तथा उत्तम मार्गदर्शन से हम सभी को बहुत कुछ सीखने का अवसर प्राप्त हुआ।

सितम्बर के महीने में राजभाषा प्रकोष्ठ की ओर से हिंदी दिवस का भी आयोजन किया गया जिसके अंतर्गत हिंदी साहित्य सभा ने 2 प्रतियोगिताएं करवाई : तर्क तथा कविता/निबंध लेखन. दोनों ही प्रतियोगितायों में काफी लोगों ने हिस्सा लिया तथा अपनी प्रतिभा का उच्च प्रदर्शन भी किया।

इनके अलावा हमारे कैम्पस रेडियो 90.4 एफ एम से भी जुडकर भी हम कैम्पस तथा आस पास से लोगों के दिलों में अपनी जगह बनाये रखने की कोशिश करते हैं. रेडियो पर हमारे 2 कार्यक्रम बिना किसी बाधा के आज भी प्रसारित किये जा रहे हैं, बिखरे मोती तथा मनन की आवाज़. जहाँ "बिखरे मोती'' प्रसिद्ध रचनाकारों द्वारा लिखित कहानियों का संग्रह है, वही ''मन की आवाज'' हमारे सभा के नए और उम्दा लेखकों को अपनी प्रतिभा दिखने का एक अवसर प्रदान करता है।

योजनाएं तो कई हैं, कुछ नयी कुछ पुरानी. हिंदी साहित्य सभा आई आई टी कानपुर किसी एक समन्वयक के कार्यकाल में नहीं चलता, यह तो सालों से चला आ रहा उस विशाल वृक्ष की तरह है जिसकी जड़े बहुत मजबूत हैं और साल दर साल इसकी शाखाएं नयी ऊचाँइयों को छूती है. आशा करते हैं इस राह पर आप सभी का प्यार और आशीर्वाद हमें ऐसे ही सदा मिलता रहेगा।

समन्वयक
हिंदी साहित्य सभा
भा. प्रौ. सं. कानपुर

कार्यालयीन उपयोगी टिप्पणियाँ

मामले का सारांश नीचे रखा है–	A brief Summary of the case is placed below
स्वीकृति की प्रतीक्षा है–	Acceptance is awaited
सद्भाव से कार्य करते हुए–	Acting in good faith
इस मामले में कार्यवाही की जा चुकी है–	Action has already been taken in this matter
शीघ्र कार्यवाही निवेदित है–	An early action is requested
अनुमति लेकर अंदर आएं–	Admission with permission
कार्यसूची भेजी जा रही है–	Agenda is sent herewith
एक पक्षीय निर्णय–	Ex-parte judgement
जबाब तलब किया जाए–	Call for explanation
समेकित रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए–	Consolidated report may be furnished
पद पर बने रहना–	Continue in the office
विसंगति का समाधान कर लिया जाए–	Discrepancy may be reconciled
विवेकाधिकार–	Discretionary power
आवश्यक कार्यवाही करें–	Do the needful

रसानुभूति

(शृंगार रस – वियोग भाव)

मधुबन तुम कत रहत हरे?
दुसह बियोग स्यामसुंदर के, ठाढ़े क्यौं न जरे।।
मोहन बेनु बजावत तुम्ह तर, साखा टेकि खरे।
मोहे थावर अरु जड़–जंगम, मुनि–जन ध्यान टरे।।
वह चितवनि तू मन न धरत है, फिरि–फिर पुहुप धरे।
सूरदास–प्रभु बिरह–दवानल, नख–सिख लौं न जरे।।

संपर्क
राजभाषा प्रकोष्ठ
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर–208016 (उ.प्र.)
दूरभाष–0512-2597122, 2597249
ईमेल–arunk@iitk-ac.in, vedps@iitk-ac-in

अभिकल्प–सुनीता सिंह